BIHAR YOGA

योग सत्संग

ज्ञान योग, कर्म योग एवं विज्ञानमय कोश का जागरण



स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग सत्संग

ॐ, प्रेम, मंगलम्

योग सत्संग

ज्ञान योग, कर्म योग एवं विज्ञानमय कोश का जागरण

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

*रिखियापीठ में ईरान से आये साधकों को
जनवरी 2007 में दिये गये सत्संग*

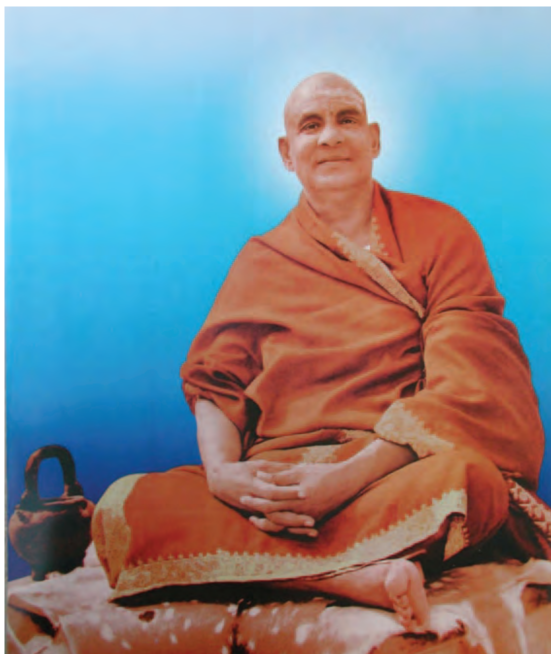


योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा *प्रथम संस्करण 2009*
पुनर्मुद्रण 2011
पुनर्मुद्रण 2012
द्वितीय संस्करण 2016

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड,
नई दिल्ली

वेबसाइट : www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दु:खी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

अनुक्रमणिका

ज्ञान योग

यह आश्चर्य की बात नहीं कि आज योग ने एक परिपूर्ण और सम्पूर्ण विद्या का श्रेय हासिल किया है और समाज के प्रत्येक वर्ग में योग को मान्यता मिली है, चाहे वह फैशन, उद्योग, खेल जगत्, चिकित्सा क्षेत्र, शिक्षा, सेना, पुलिस या आम आदमी का जीवन हो। इतना ही नहीं, सियाचीन की बर्फीली चट्टानों से थार के रेगिस्तान की कठिन परिस्थितियों को झेलने में योग एक अहम् भूमिका निभा रहा है। बच्चे-बूढ़े-नौजवान, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, अमीर-कंगाल, देश-वर्ण-जाति, धर्म-राष्ट्रीयता इत्यादि जैसे हर भेद-भाव को पीछे छोड़कर सभी ने आज योग को तहेदिल से स्वीकार किया है। दुनियाभर में योग की डिमॉण्ड है और अब कोई संदेह नहीं कि योग समाज का अभिन्न अंग बन चुका है।

आखिर योग की इस अधिक लोकप्रियता का रहस्य क्या है? योग को इतनी व्यापक मान्यता क्यों मिली? सच पूछें तो इसका जवाब बहुत ही सरल है, जो एक ही वाक्य में बतलाया जा सकता है। और वह है कि योग में मानव समाज की हर समस्या को हल करने की क्षमता है। मानव व्यक्तित्व के अलग-अलग स्तर हैं, जिस कारण उसकी आवश्यकतायें भी नानाविधि हैं। वह हमेशा कार्यवश रहता है, जिस कारण उसे कुछ न कुछ करने की इच्छा सताती रहती है। अगर उसे कुछ करने को न मिले तो वह उदास हो जाता है। इसके अलावा मनुष्य बुद्धिजीवी है जिस कारण वह हमेशा अपने चारों ओर एक तर्क की दुनिया बुनते रहता है। कोई बात उसे तर्कहीन लगे तो वह उसे कभी नहीं स्वीकारता, भले ही वे तथ्य कितने ही सच क्यों न हों। अपनी दुनिया को वह इस तर्क के आइने के जरिए ही देखता है और अपना जीवन उसी आकार में ढालने का प्रयास करता है।

इसके ठीक विपरीत वह अत्यन्त भावुक भी है। हर समय उसके व्यवहार पर भावनाओं का गहरा असर रहता है और ये भावनाएँ इतनी तीव्र हैं कि यदि उन्हें सही दिशा नहीं दी जाए या उनका सही उपयोग न किया जाये तो वे घातक सिद्ध हो सकती हैं। भावनाओं के अतिरेक से नर्वस ब्रेकडाउन, आत्महत्या, दिल का दौरा और अनेक घातक परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा मनुष्य का एक पारलौकिक व्यक्तित्व भी है जिसका परिचय उसको स्वप्न, कल्पनाओं और सूक्ष्म विचारों के रूप में होता है। और फिर मूल रूप में उसका स्वभाव आध्यात्मिक है जिसकी झलक उसकी श्रद्धा और विश्वास में साफ दिखाई देती है। एक नास्तिक भी भले ही भगवान पर विश्वास न करें, अपने आप पर और अपने अस्तित्व पर विश्वास तो करता ही है।

योग की सफलता का मुख्य कारण यह है कि वह इन सब आवश्यकताओं पर गहरा ध्यान देता है। योग की शुरुआत भले ही शरीर से हो, किन्तु उसका असर व्यक्ति को चेतना के उच्चतम स्तर तक पहुँचा सकता है। कर्म योग उसकी कार्यशीलता को सम्बोधित करता है, वैसे ही भक्ति योग उसकी भावनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करता है। राज योग उसकी पारलौकिक संभावनाओं का पोषण करता है और ज्ञान योग उसकी बौद्धिक प्यास को तृप्त करता है। योग का यह समन्वय हमारी आध्यात्मिक खोज के लिए पर्याप्त है, क्योंकि इन विभिन्न योगों के द्वारा हमें जीवन सम्बन्धित हर एक क्लिष्ट प्रश्न का सरल उत्तर आसानी से मिल सकता है।

शरीर और मन के परे

अनादि काल से हमारे पूर्वजों को स्पष्ट मालूम था कि अगर मनुष्य ने अपने आप को सुधारना है तो यह केवल चेतना के विस्तार से ही सम्भव है। स्थूल चेतना का दिव्य अनुभूतियों की ओर विस्तार होने पर ही मनुष्य पशु योनि से विरासत में मिली आहार, निद्रा, भय, मैथुन जैसी स्वाभाविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण पा सकता है। परन्तु आज की आधुनिक दुनिया में चेतना के विकास पर कोई ध्यान नहीं देता। ज्यादा से ज्यादा बुद्धि के विकास का प्रयत्न होता है, क्योंकि आज की दुनिया में स्वाभाविक प्रवृत्ति के साथ-साथ बुद्धि की भी जरूरत पड़ती है। इसलिए जीवन में सफलता के लिए हम केवल बुद्धि पर ध्यान देते हैं। पर सवाल उठता है कि क्या हमारे जीवन का प्रयोजन केवल

जीना है? आम मनुष्य की सोच आज इतनी संकुचित और सीमित हो गयी है कि जीने के अलावा उसे और कुछ सूझता ही नहीं।

हमें यह समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है कि केवल बुद्धि के विस्तार से हमारी समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है। आखिरकार क्या तुम केवल शरीर, मन, भावना और बुद्धि हो या तुम्हारा अस्तित्व उससे परे भी कुछ है। शरीर और शारीरिक स्तर की चीजों से हम इतने आसक्त हैं कि हमारा योगाभ्यास भी केवल शरीर और मन तक ही सीमित रह गया है। लेकिन योग की पहुँच इससे भी परे है और दुनिया में आध्यात्मिक मानसिकता के अनेक लोग हैं जिनमें शरीर और मन के परे क्या है यह जानने की रुचि है। क्या यह शरीर ही अंतिम सत्य है या इससे सूक्ष्म भी कुछ है– ऐसी जिज्ञासा उनमें प्रबल है।

अपने आप को पहचानो

शरीर और मन से परे हमारे अस्तित्व के अलावा एक और प्रश्न उठता है। क्या हमारे अतिरिक्त इस ब्रह्माण्ड में अन्य कोई अस्तित्व है जिसका स्वरूप दिव्य है? सीधे शब्दों में कहा जाय कि मन में देवी-देवताओं की सच्चाई का प्रश्न उठता है। भारतवर्ष में इन सवालों पर सदियों से विश्लेषण होते आया है और हमारे ऋषि-मुनियों ने इन सवालों पर सहस्राब्दियों तक खुले आम चर्चा की और अंत में वे एक ही निष्कर्ष पर पहुँचे – 'Know Thy Self'– अपने आप को जानो – कोऽहं।

उनके इस वक्तव्य का आधार है कि यदि तुम अपने आप को जान लोगे तो उसी क्षण ब्रह्माण्ड में सब चीजों का ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। आज वैज्ञानिक वर्ग भी ऐसी ही बातें कर रहे हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य, ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति है, याने कि हर मनुष्य के भीतर एक छोटा ब्रह्माण्ड छिपा है। जो कुछ बाहर दिखाई देता है – सूर्य-चन्द्रमा, ग्रह-तारे, पर्वत-नदियाँ, ये सब भीतर में लघु रूप में विद्यमान हैं। फर्क इतना है कि वे इसे अद्वैत वेदान्त के बदले वैज्ञानिक परिभाषा में 'युनिफाइड फील्ड थीयरी' कहते हैं।

युनिफाइड फील्ड थीयरी की मान्यता है कि इस ब्रह्माण्ड में सृष्टि का हर पदार्थ व्यापक अदृश्य माध्यम के द्वारा एक-दूसरे से जुड़ा है। विख्यात वैज्ञानिक आइन्सटाइन ने कहा है, 'आँखों से दिखने वाली यह पृथकता

केवल भ्रम है, असलियत में इस ब्रह्माण्ड में स्थित हम सब एक ही हैं। बस हमें अपनी अनुकम्पा की सीमाओं को इतना बढ़ाना होगा कि हम सारे विश्व को अपने दायरे में समा लें। 'इस विश्व और आकाश गंगा में हर जीव-जंतु जिसमें तुम और हम भी समाविष्ट हैं – एक अदृश्य शक्ति से आपस में जुड़े हैं। उस अदृश्य शक्ति का दूसरा नाम परमात्मा ही है।

यूँ कहा जा सकता है कि इस सृष्टि में एक अत्याधुनिक और अत्यन्त प्रगत नेटवर्क है। यह अतिविशाल नेटवर्क के द्वारा सारे जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदियाँ, चन्द्र-सूर्य-तारे, अमीबा, वायरस, बॅक्टेरिया – इस सूचि का कोई अंत नहीं, क्योंकि इसमें पूरी सृष्टि समायी है, सब एक दूसरे से बद्ध हैं। अचरज की बात यह है कि हम इसे आँख मूँदकर और बिना किसी अध्ययन के स्वीकार करते हैं, क्योंकि वैज्ञानिक ऐसा कहता है और हमें वैज्ञानिकों से तर्क करने कि न तो हिम्मत है और न ही बुद्धि।

पर गौर करने कि बात है कि आज से हजारों वर्ष पहले, वैदिक काल में, हमारे ऋषि-मुनियों ने ठीक यही बात कही, जो वेद और उपनिषदों में अंकित है। उन्होंने कहा – 'अणोरणियाम् महतो महीयान्।' अर्थात् सृष्टि में छोटे अणु से लेकर विशाल अकाशगंगा तक सभी कुछ एक परमात्मा से व्याप्त है। पर मजे की बात यह है कि यदि हम एक व्यासदेव या वाल्मिकी के मुख से यह वैज्ञानिक वास्तविकता सुनते हैं कि हर एक जीव एक-दूसरे से आत्मा के द्वारा सम्बद्ध है तो हमें इस पर शंका कुशंका करने में कोई हिचकिचाहट नहीं। हर एक व्यक्ति अधिकारी बन जाता है और बिना कोई अध्ययन किये टिप्पणी और तरह-तरह के प्रश्न को उठाने लगता है, जिसका कोई आधार ही नहीं।

पर यदि कोई अॅल्बर्ट आइन्स्टाइन कहे– $E = mC^2$, हम उसे तुरन्त ब्रह्मवाक्य मान कर उसकी विद्वत्ता की सराहना करते हैं। वैज्ञानिक जो भी कहते हैं उसे हम स्वीकार लेते हैं, जब कि उन व्याख्याओं की वास्तविकता को न तो हमने देखा है और न ही जाँचा है। उदाहरण के लिए, ऊपर की व्याख्या $E = mC^2$ का तात्पर्य है कि पदार्थ और ऊर्जा एक-दूसरे में रूपांतरित हो सकते हैं। इस सत्य को हाल में आइन्स्टाइन ने बीसवीं सदी में घोषित किया, पर हमारे ऋषि-मुनि अरबों वर्ष से यह कहते आये हैं कि तुम सर्वज्ञ बन सकते हो, क्योंकि एक लोक में तुम पदार्थ हो तो दूसरे में ऊर्जा और तीसरे में चेतना। अपने आप को जानने से हम सब कुछ जान सकते हैं,

क्योंकि एक स्तर पर हम पदार्थ, दूसरे स्तर पर ऊर्जा और उससे सूक्ष्म एक और स्तर पर चेतना हैं। और वह चेतना सर्वव्यापक है।

लगता है कि आज हमारे समाज में एक बीमारी आ गयी है। हमारी सोच और समझ, हमारे वैचारिक प्रश्न केवल बाहर तक ही सीमित रहते हैं। बातें तो हम अध्यात्म की करते हैं जरूर, पर अटके हैं पदार्थवाद और विषयों की वृत्ति में। अध्यात्म में हमारी रुचि केवल एक दिमागी खुराफात है। और इससे यदि हमें कोई जवाब मिल भी जाए तो हम उस पर और प्रश्न करने लगते हैं, क्योंकि बुद्धि और मन का तो स्वभाव ही शक और प्रश्न तक सीमित है। सच तो यह है कि हमें मन और बुद्धि द्वारा आध्यात्मिक प्रश्न का उत्तर कभी नहीं मिल सकता और पदार्थवाद और इन्द्रियों के वश में रहकर हमें सच्चा आनन्द मिलना असम्भव है। हाँ, यदि तुम्हें पदार्थवादी जिन्दगी जीने में रुचि हो तो पूरा हक है, लेकिन तुम्हारे चुने रास्ते से हटकर चलने वालों पर ऊँगली उठाने का तुम्हें कोई हक नहीं बनता। यदि कोई मन और पदार्थ के परे बसी चेतना का अनुभव करना चाहे और उसके अनुकूल जीवन पद्धति चुने तो उसे वैसे जीने का उतना ही हक है जितना तुम्हें तुम्हारी चुनी जीवन पद्धति जीने का हक है।

बहिरंग और अंतरंग योग

इन दो तरह के लोगों के लिए दो भिन्न प्रकार के योग मार्ग हैं – बहिरंग और अंतरंग। जो योग आज दुनिया भर में हजारों-लाखों की संख्या में जवान और वृद्धों को शरीर और मन की तंदुरुस्ती के लिए सिखलाया जा रहा है वह बहिरंग योग है। परन्तु आंतरिक चेतना के विस्तार के लिए एक और योग है, जिसको अंतरंग योग कहते हैं। बहिरंग योग लाभदायक अवश्य है, पर यदि तुम अपने में मूलभूत रूपांतरण चाहते हो तब तुम्हें अंतरंग योग को अपनाना पड़ेगा। हाँ सच है कि बहिरंग और अंतरंग योग एक-दूसरे से अलग नहीं, क्योंकि बहिरंग योग अन्त में व्यक्ति को उस बिन्दु तक ले जाता है जहाँ वह गहराई में छिपे सूक्ष्म तत्त्व का अनुभव करने लगता है और उसका झुकाव अंतरंग जीवन की तरफ जाता है।

अंतरंग जीवन का मतलब है कि चेतना की गहराई तक पहुँचना। यदि तुम अपनी चेतना को संभाल सको तो तुम जीवन के हर पहलू को संभाल सकोगे,

क्योंकि चेतना ही तुम्हारी परिपूर्णता है। फिर तुम्हें न तो योगा थेरॉपी और न ही फिटनेस योगा की आवश्यकता होगी, क्योंकि तुम्हारी सब समस्याएँ चेतना के विकास के द्वारा सम्भल जाएँगी। क्योंकि चेतना वह जड़ या स्रोत है जहाँ से शरीर, मन, भावना और बुद्धि उत्पन्न हुए हैं। जब जड़ तक जाने में तुम सफल होगे, तब उसकी शाखाएँ अपने आप में सुधर जाएँगी। चेतना की गहराईयों को खोज निकालना ही आंतरिक जीवन का तात्पर्य है, क्योंकि अगर तुम अपनी चेतना को व्यवस्थित कर सको, तुम्हारे समस्त व्यक्तित्व, शरीर, मन, बुद्धि अहंकार, भावना, नकारात्मक और सकारात्मक सोच अपने आप ही व्यवस्थित हो जायेंगे।

आत्मा की खोज

योग का मुख्य लक्ष्य चेतना का विस्तार और विकास ही है और ज्ञान योग इसमें अहम् भूमिका निभाता है। ज्ञान शब्द का मूल धातु 'ज्ञात्' है, ज्ञात् माने *जानना।* क्या जानना? हमें शब्द, रस, स्पर्श, गन्ध और रूप की बाहरी दुनिया के बारे सब मालूम हो सकता है जो हमें कान, मुख, त्वचा, नासिका और आँखों द्वारा ज्ञात होता है। इसको अपरा ज्ञान कहते हैं जो समय के अधीन नश्वर है और जिसका अंत मृत्यु है। परन्तु यह ज्ञान योग का विषय नहीं।

ज्ञान योग का विषय है आत्मा। वह आत्मा जिसे हम चेतना, कुण्डलिनी शक्ति और अनेक नामों से सम्बोधित कर सकते हैं। चाहे जिस नाम से हम पुकारें, मतलब तो उसका आात्मा से ही है जो एक अनादि और अनंत तत्त्व है। ज्ञान योग का विषय केवल और केवल आत्मा के बारे में जानना, सोचना, सुनना और समझना है। यह आत्मा क्या है और इसका स्थान कहाँ है? क्या यह शरीर में बसती है या शरीर के बाहर? यह आत्मा शरीर में कहाँ से प्रवेश करती है और अन्त में कहाँ जाती है? क्या यह शरीर की तरह नश्वर है? ज्ञान योग में यही प्रश्न पूछे जाते हैं, जो परा विद्या की श्रेणी में आते हैं। वह विद्या जो आत्म के बारे में ज्ञान उजागर करती है, उसे परा विद्या कहते हैं, जो अनादि, अनंत और अविनाशी तत्त्व के बारे में हमें ज्ञात कराती है।

जब ऋषियों ने कहा, 'अपने आप को पहचानो' तब उनका संकेत इसी अविनाशी तत्त्व की ओर था। उसी आत्मा को जानो जो अमर है, जिसे सूर्य

सुखा नहीं सकता, और न ही तलवार काट सकती है। शस्त्र शरीर को अवश्य काट सकते हैं, पर आत्मा को नहीं। उसी आत्मा को जानो। जब ऋषियों ने मनुष्य को आत्मविचार करने का सुझाव दिया तब उनका मतलब यही था कि आत्म साक्षात् का प्रयत्न करो। अनादि काल से अनेकों ने इस मार्ग को अपनाकर आत्मा के स्वरूप को जानने की चेष्टा की है। ऐश और आराम के आनंद को पीछे छोड़कर, सब चीज त्यागकर वे केवल आत्मा को जानने के लिए जीते थे।

जब विश्व का सबसे शक्तिशाली सम्राट् सिकंदर यूनान से उस भारत को पराजित करने निकला जो उस समय आज के अमेरिका के समान सोने की चिड़िया कहलाता था, तब उसके गुरु अरिस्तोतल ने उसे भारत के उन ऋषि-मुनियों के बारे में बतलाया जो केवल आत्मज्ञान के लिए जीते थे। अरिस्तोतल ने कहा, 'तुम भारत जा रहे हो जहाँ ऐसे अनेक महात्मा हैं जिन्होंने विषय भोग से ऊपर उठकर आत्मज्ञान प्राप्त किया है, तुम अपना समय केवल भौतिक पदार्थ को जीतने में मत गवाँना। तुम्हें यह अवसर पदार्थ के परे आत्मा को जीतने का तरीका भी उन ऋषियों से सीखना चाहिए।'

भारत भ्रमण के दौरान गुरु की आज्ञा को मन में रखकर जहाँ भी वह गया सिकंदर हमेशा ऐसे महात्माओं की खोज करता रहा और एक दिन अचानक जंगलों के एकान्त में एक दिगम्बर साधु पत्थर पर बैठे हुए मिला। सिकंदर फौरन उस दिगम्बर साधु के पास गया और उसे आश्चर्य हुआ कि एक विश्वसम्राट् और उसकी शक्तिशाली सेना के सामने वह महात्मा जरा सा भी प्रभावित नहीं हुआ। सिकंदर ने उससे पूछा, 'क्या तुम्हें मेरा सामना करने में कोई डर नहीं? आखिर मेरे पास इतनी बड़ी सेना है जो तुम्हें इस क्षण बन्दी बना सकती है। 'यह सुनकर वह साधु केवल हँसकर चुप रहा। अपने अभिमान से चूर सिकंदर को यह साधु किसी पागल से कम न लगा, क्योंकि वहाँ नंगे बैठे हुए उस साधू ने एक सर्वशक्तिमान् सम्राट् के मुँह पर हँसने का साहस दिखाया। यह देखकर सिकंदर में एक जिज्ञासा जगी। और उसने साधु से अनेक सवाल किये जिनके उत्तर से सिकंदर इतना प्रभावित हुआ कि उसने उस सिद्ध महापुरुष को अपने साथ वापस यूनान ले जाने का विचार किया। अमीर और शक्तिशाली लोगों की यही कमजोरी है। वे समझते हैं कि उनकी ताकत कुछ भी खरीद सकती है और उन्हें जो भी पसंद आये,

उसको वे तुरन्त हासिल करना चाहते हैं। सिकंदर भी ऐसा ही शक्तिशाली सम्राट् था। अपने गुरु की प्रसन्नता के लिए सिकंदर उस जैन मुनि को अपने वातावरण से उठाकर अपने साथ वापस यूनान ले जाना चाहता था। सिकंदर ने उस मुनि को, जिनका नाम कल्याण था, सभी प्रकार के ऐशो आराम के प्रलोभन दिये, धन-दौलत का लालच दिया, परन्तु कल्याण मुनि ने इनकार कर दिया। जब कोई भी प्रलोभन काम नहीं किया तब सिकंदर ने अपनी शक्ति इस्तेमाल की और धमकी देकर कहा कि अगर वह उनके साथ नहीं गया तो वह उसे मार डालेगा। पर कल्याण मुनि को कुछ फर्क नहीं पड़ा। वह हँसकर बोला, 'तुम मुझे कुछ नहीं कर सकते । किसे मारोगे? मैं तो अमर आत्मा हूँ जिसे तलवार काट नहीं सकती और न ही अग्नि जला सकती। मैं अमर हूँ।' मुनि की आस्था में अत्यन्त बल था। क्षणमात्र के लिए भी वह नहीं डगमगाये। साक्षात् मृत्यु के सामने भी उन्हें आत्मा पर इतना अटूट और मजबूत विश्वास था, जितना अन्य समय में जब उनके जीवन पर कोई संकट नहीं था। इस श्रेणी का ही व्यक्ति ज्ञान योग साधना का पात्र है। जब तक श्रद्धा अटल न हो और मन प्रश्न और शंकाओं से घिरा हो, तब तक आत्मा का अनुभव करना नामुमकिन है।

आत्मा को जानना है तो बहुत सरल – पर साथ ही साथ क्लिष्ट भी, क्योंकि जीवन में हमेशा सरल चीजों को हम नजरअंदाज कर देते हैं। हमारा नजरिया हमेशा बड़ी से बड़ी और महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को हासिल करने में टिका रहता है, इतना कि हम अपने मूल स्वभाव को ही भूल जाते हैं। यश, दौलत, ऐश आराम के पीछे हम इतने पागल हो जाते हैं कि हमें ख्याल ही नहीं आता कि यदि हम उस मूल तत्त्व को जान लें तो हम सब हासिल कर सकते हैं।

आत्मा को जानना बहुत ही सरल है, क्योंकि इस अनुभव के लिए कुछ भी करना आवश्यक नहीं है। न हिमालय की चोटियों पर जाने की आवश्यकता है, न सिर के बल खड़े रहने की जरूरत, न श्वास को बंद करने या दहिना-बायाँ श्वास करना जरूरी है और न आँखों को बंद कर किसी प्रतीक पर मन को केन्द्रित करने की जरूरत। तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत नहीं, सिवाय आत्मा के अस्तित्व पर अटूट विश्वास रखने के। उसी आत्मा की सत्यता पर विश्वास करना जो सत्यं शिवं सुन्दरं है। वही आत्मा जो तुमसे अलग नहीं

है, जो ज्ञान है, जो प्रकाश है और तुम्हारे भीतर विद्यमान है। तुम्हें केवल इस पर दृढ़ विश्वास होना चाहिए, उतना ही दृढ़ विश्वास जितना कल्याण मुनि को था। उतना ही दृढ़ विश्वास जिसके द्वारा तुमको यकीन है कि तुम स्त्री हो, पुरुष नहीं। इस पर विश्वास करने के लिए तुम्हें कोई प्रमाण की जरूरत नहीं। क्या तुम्हें कभी यह शंका हुई कि तुम स्त्री हो? नहीं, इसके लिए तुम्हें कोई पुष्टि की आवश्यकता नहीं। आत्मा के प्रति ऐसा अटल विश्वास होना चाहिए, जिसे कुछ भी बहका या बदल नहीं सकता। तब एक क्षण में अभी, इसी वक्त आत्मदर्शन हो सकता है। ज्ञान योग में इस प्रकार के आत्मचिंतन की आवश्यकता है।

हाँ, सच है कि हम सब में इस किस्म का विश्वास नहीं है। पर कहीं तो हमें शुरुआत करनी चाहिए। अपने इस संशययुक्त, विक्षिप्त और मतभेदी मन से ही अगर हम आत्मा के बारे में सोचना शुरू करें तो वह भी सही दिशा में उठाया एक छोटा सा ठोस कदम होगा। लक्ष्य है मंजिल तक पहुँचना; चाहे धीमी गति से या फिर जेटप्लेन की रफ्तार से – यह तो हम पर निर्भर है। परन्तु इन प्रश्नों पर जब तक चिंतन नहीं किया जाएगा तब तक हम उस आनन्द बिन्दु का अनुभव नहीं कर सकते जिसकी हमें खोज है।

जिसकी तुम्हें तलाश है वह तुम्हारे भीतर ही है। तुम्हारे भीतर समाये सच्चिदानन्द आत्मा के कारण तुम परिपूर्ण और पवित्र हो, परन्तु तुम्हें यह नहीं मालूम। हाँ, उस दुर्लभ आनन्द के अनुभव का तुम्हें एक धुँधला नजारा जरूर है जिस कारण तुम हमेशा उसकी तलाश बाहरी दुनिया में करते रहते हो। ठीक उसी तरह जैसे कस्तूरी मृग अपने ही भीतर से उत्पन्न मादक सुगंध को बाहर खोजता है। भारत में कस्तूरी मृग की नाभि से जो कस्तूरी उत्पन्न होता है उसकी सुगंध इतना मदहोश कर देती है कि सही मौसम में जब वह सुगंध अपने पूरे रंग में आती है उस वक्त वह मृग अपने भीतर समाये कस्तूरी की सुगंध को खोजते खोजते पागलों की तरह पूरे जंगल में दौड़ने लगता है। उसे नहीं मालूम कि सुगंध का स्रोत उसके भीतर छिपा है। अविद्या के कारण वह जिंदगी भर सुगंध की खोज में दौड़ते रहता है। एक दिन सत्य को बिना जाने वह थक कर जंगल में गिरकर मर जाता है। हम भी उस कस्तूरी मृग की तरह परम आनंद को बाहर ही खोजते रहते हैं, जबकि वह आनन्द हमारे भीतर समाया है।

ज्ञान योग की शुरुआत आत्मा के अस्तित्व और उसके स्वरूप की जिज्ञासा से होती है। जैसे हठ योग, राज योग, भक्ति योग व अन्य योग मार्गों में मंजिल पाने के लिए विशिष्ट अभ्यास बतलाये हैं, ठीक उसी तरह शास्त्रों ने ज्ञान योग के कुछ अभ्यास नियुक्त किये हैं। सबसे पहले आता है – श्रवण। जिसका सीधा अर्थ है सुनना और ज्ञान योग के सम्बन्ध में श्रवण का तात्त्पर्य केवल आत्मा से होता है। उस सर्वव्यापक चेतना या परब्रह्म-परमात्मा के बारे में सुनना। यदि अपनी संस्कृति, मजहब या धार्मिक मान्यताओं के कारण आत्मा शब्द पसंद नहीं आवे, तो उस शुद्ध चेतना को आप जिस भी नाम से पुकारना चाहें, जो आपकी सोच के अनुकूल हो, वह नाम आप इस्तेमाल कीजिए। उस से कोई फर्क नहीं पड़ता, परन्तु सबसे पहले आपको वहाँ जाना चाहिए जहाँ उसके बारे में चर्चा होती है या आत्मा के बारे में जानकारी मिलती है। जैसे आप अपने चहेते फिल्मस्टार या पॉप स्टार का शो या अपने मनपसंद सिनेमा या भोजन या सुन्दर वस्त्र और आभूषण खोज निकालते हैं, चाहे आपको मीलों चलना क्यों न पड़े फिर भी आप उसको पाने के लिए सही दुकान तक पहुँचने के लिए कुछ भी करने के लिए तैयार हैं। ठीक उसी तरह आपको वह स्थान खोजना चाहिए जहाँ आत्मा की चर्चा होती है। आत्मज्ञानियों से आत्मा का श्रवण करने पर जो तेज और ऊर्जा आत्मा के जानने से प्राप्त होती है उसे फिर अपने भीतर सम्भाल के रखना चाहिए, उसे एकत्रित बनाये रखना चाहिए ताकि ऐहिक दुनिया की गतिविधियों पर विचलित होने से वह ऊर्जा बिखर न जाए। जिस प्रकार आप कीमती हीरे को बड़ी हिफाजत से छिपाकर उसको गुप्त रखते हैं, ठीक वैसे ही आत्म तत्त्व के बारे जो विचार आपको मिले और जो शब्द आपने सुने, उन्हें अपने भीतर समाकर उन पर गहराई से आत्मचिंतन करना चाहिए। यह ज्ञान योग का दूसरा अभ्यास माना जाता है, जिसको मनन कहते हैं।

अगर श्रवण के द्वारा जो हमने सुना उस पर मनन या चिंतन न किया जाय, श्रवण से प्राप्त हुआ ज्ञान बिखर जाता है। अनेक बार हम आत्मा की चर्चा सुनते हैं जिससे हम बहुत प्रभावित और प्रेरित भी होते हैं। परन्तु घर लौटने पर वापस अपनी दुनिया में खो जाते हैं। हमारी चिंतायें, ईर्ष्या, द्वेष, राग, लोभ, क्रोध,क्लेश इत्यादि हम पर हावी होकर हमें सब भुला देती हैं। ऐसे होने नहीं देना। जैसे तुम्हारा स्वभाव हो वैसे रहो, पर अध्यात्मिक मार्ग को पकड़े

रहो। यह समझकर कि वह बहुत ही अमूल्य है और जब तुम अकेले अपने कमरे में हो तब उसके बारे में चिंतन और मनन करो। मजे की बात तो यह है कि जितना तुम आत्मा के सत्य पर चिंतन करोगे उतना ही वह तुमको अपने बारे में झलक देता रहेगा। तुम सत्य की ओर एक कदम बढ़ाओ और सत्य तुम्हारी ओर छलांग लगाकर अनेकानेक चीजों का खुलासा करता है। यही सत्य आत्मा की शक्ति है और अगर ऐसा न होता तो हम उस आत्मशक्ति को सर्वश्रेष्ठ कैसे कह सकते हैं? वह तो सर्वश्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है, इसीलिये तुम्हारा मार्गदर्शन करने की उसमें क्षमता है, तुम्हारे मार्ग के घोर अंधकार को दूर कर उसे प्रकाशित करने की ताकत उसमें है। तुम्हे बस सच्चे दिल से चेष्टा करने की आवश्यकता है। दिखावे के लिये नहीं, बल्कि पूरी निष्ठा के साथ चेष्टा करनी चाहिये। और जैसे ही तुम इस तरह सत्य पर मनन करते हो, अनायस ही ध्यान लग जाता है। कोई प्रयास की आवश्यकता ही नहीं। अपने से, बिना चेष्टा के आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है। यह ज्ञान योग का तीसरा अभ्यास है, जिसे निदिध्यासन कहते हैं।

ज्ञान योग के सोपान

ज्ञान योग के तीन सोपान हैं, श्रवण – सुनना; मनन – चिंतन करना और निदिध्यासन – ध्यान करना। आत्मा के विषय पर सुनना, चिंतन करना और उस पर ध्यान करना। अब आप यह कह सकते हैं कि यह मेरे लिये कितना व्यावहारिक है? समाज के दायरे में रहकर यह कितना सम्भव है? मुझे इतने काम रहते हैं – खाना बनाना, काम पर जाना, परिवार की देखभाल, बीमारियों का सामना करना और इन चीजों के लिए पैसा कमाना। सौ-सौ काम रहते हैं। इस परिस्थिति में आत्मा के बारे में बैठ कर चिंतन करना कितना सम्भव है? यह प्रश्न आप निश्चित रूप से पूछेंगे।

खैर, इसके जवाब में हम यही कहेंगे कि अगर आपके समाज में सच्चाई जानने का कोई स्थान ही नहीं और न उसमें रुचि, तो उस समाज को त्याग देना ही श्रेयस्कर है, क्योंकि सच्चाई के साथ कोई समझौता नहीं। सच समझौते की वस्तु नहीं है जैसे उस कल्याण मुनि ने मृत्यु के सामने भी अपने आत्मा विश्वास के साथ कोई समझौता नहीं किया। ठीक उसी तरह सत्य रोज के बदलते हुए समाज के साथ कोई समझौता नहीं करता है। सत्य अनादि है और यदि जिस

समाज की हमने कल्पना की, उसमें सत्य की कोई जगह नहीं है, तो ऐसे समाज का क्या उपयोग? हमें चयन करना होगा कि क्या हम सत्य के साथ जीना चाहते हैं या असत्य के साथ। हो सकता है कि हम में समाज को बदलने की ताकत न हो, परन्तु अपने आप को बदलने की क्षमता तो अवश्य हर व्यक्ति में रहती है।

आत्म-चिंतन एक व्यक्तिगत क्रिया है और कोई भी किसी भी परिस्थिति में, जहाँ भी वह रहता हो, जो भी वह करता हो, वह इसका अभ्यास निश्चित रूप से कर सकता है। हर रोज जब सब काम हो जाएँ, सोने के पहले आत्मचिंतन के लिए थोड़ा समय दिया जा सकता है। या फिर सुबह उठकर इन विषयों पर कम से कम दस मिनट मनन किया जा सकता है। आप एक डायरी भी रख सकते हैं जिसमें आप दिन-ब-दिन अपने अनुभव और विचारों को अंकित कर सकते हैं। यह सरल अभ्यास आप को बहुत सारी सच्चाईयों का सामना कराएगा।

इसे ज्ञान योग कहते हैं और अब तक आपको अनुमान लग ही गया होगा कि इसका अभ्यास तभी सम्भव है जब मन की वृत्तियों पर हमारा बस चले। आत्मचिंतन के लिए बैठते ही मन उन चीजों की ओर भागता है जिसका आत्मा के साथ कोई लेना-देना नहीं। कोई मित्र जो याद आ जाए या कोई शत्रु जिसे आप पसंद नहीं करते। यह सब विचार सामने आने लगते हैं और आत्मा के विचार लुप्त हो जाते हैं। असलियत तो यही है और इसीलिए ज्ञान योग का अभ्यास गुरु के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

नमो नारायण

कर्मयोग

एक बार एक साधक स्वामी सत्यानन्दजी के पास ध्यान सीखने आया। स्वामीजी ने उसे सलाह दी कि ध्यान का अभ्यास करने के पहले आश्रम में रह कर योग द्वारा अपने शरीर और मन को वह शुद्ध करे, ताकि ध्यान की प्राप्ति सरल हो सके। लेकिन किसी कारणवश शुद्धि क्रियायें पूरी होने के पहले ही उसे वापस घर जाना पड़ा। ध्यान के अभ्यास तो उसने सीख लिये, परन्तु शुद्धि अधूरी रह गयी। अब वह सरल स्वभाव का आदमी था। गुरुजी ने जैसे बतलाया वैसे ही सभी अभ्यासों को करते गया और परिणामत: उन अभ्यासों का असर दिखने भी लगा। एक दिन जब वह ध्यानस्थ बैठा था हूबहू उसी के जैसी एक मूर्ति उसके सामने आकर खड़ी हो गयी।

घबराकर उसने उस मूर्ति से पूछा, 'भाई, तुम कौन हो और तुम्हें क्या चाहिए?' उस मूर्ति ने जवाब दिया, 'मुझे काम दो, नहीं तो मैं तुम को खा जाऊँगा।' वह चेला पूरी तरह डर गया। अब तक तो वह अपने आपको हर कठिनाई का सामना करने के काबिल मानता था। लेकिन अब वह जान गया कि मामला उसके हाथ के बाहर हो चुका है। वह दौड़े-दौड़े स्वामीजी के पास पहुँचा और सब कुछ बतलाकर मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना करने लगा। स्वामीजी हँसकर बोले, 'अरे, इतनी सी बात है। उसे काम चाहिए तो काम दे दो। तुम्हारे पास तो इतनी जमीन-जायदाद है, इतने मकान हैं, इतना विशाल व्यापार है, तुम्हारा परिवार भी काफी बड़ा है। तुम्हारे पास तो काम की कोई कमी ही नहीं है। सभी काम उसी से करवाओ और उसे दिन भर व्यस्त रखो।'

चेला अब नये जोश से घर लौटा और ध्यान में बैठ गया। जब ध्यान में उसकी प्रति-मूर्ति सामने आई, उसने तुरन्त काम की एक लम्बी-चौड़ी सूची

पकड़ा दी। खेत में गेहूँ की फसल तैयार खड़ी थी जिसको काटने, साफ करने और ट्रक में लादकर दुकान में बेचने के लिए बतला दिया। इस चेले के पास बहुत बड़ी जायदाद थी और उसे यकीन था कि उसकी छाया को इन कामों को खत्म करने में काफी समय लगेगा। जब वह छाया सब काम खत्म करके पाँच मिनट में लौटा और फिर काम माँगने लगा तो चेला अचम्भे में पड़ गया।

खैर, उसने काम की एक और लम्बी सूची अपनी उस छाया को पकड़ाई। उसे भी उसकी छाया ने मिनटों में पूरा कर दिया और फिर आ पहुँचा काम के लिए। करते-करते चेले का सारा काम समाप्त हो गया और वह छाया फिर से बोलने लगा – काम दो, वरना मैं तुम्हें खा जाऊँगा। अब तो चेले के होश उड़ गये। उसे केवल छाया की बात सुनायी देने लगी – काम दो, काम दो, वरना तुम्हें खा जाऊँगा।

पर अब उसके पास छाया के लिए कोई काम नहीं बचा और परिणामत: उसकी छाया उसे खाने के लिए दौड़ा। बेचारा चेला जान को मुट्ठी में लेकर जो भागा और सीधे स्वामीजी के पास पहुँचा। स्वामीजी को बोला, 'स्वामीजी मुझे बचाइये। यह मेरी छाया तो बड़ी खतरनाक निकली। कितना भी कठीन काम क्यों न दूँ, वह उसे पाँच मिनट में खत्म कर देता है, फिर और काम माँगने लगता है। मेरे पास जितना भी काम था उसे मैंने दे दिया। अब मेरे पास न कोई काम बचा है और न ही मुझे उसे व्यस्त रखने के लिए कोई नया काम सूझ रहा है। आप ही बतलाइए मैं क्या करूँ, नहीं तो वह मुझे खा जायेगा।'

स्वामीजी अपने इस चेले की कठिन समस्या को बड़े शान्ति से सुनते रहे। सब होने के बाद बोले, 'अच्छा सुनो, मैं तुम्हे काम बतलाता हूँ। एक लम्बा बाँस खोजकर लाओ और अपने बगीचे में गाड़ दो। और अपनी छाया को एक तेल की बोतल पकड़ाओ और बोलो इस बाँस पर चढ़ कर बाँस के ऊपरी नोंक में तेल भरो और नीचे उतरो। फिर और तेल लेकर, बाँस पर फिर चढ़ो और तेल बाँस में भरो। जब तक पूरा बाँस तेल से भर नहीं जाए, तब तक इसे करते रहो। जाओ अपनी छाया को यह काम दे दो।'

चेले ने ठीक वैसा ही किया। बाँस पर तेल डालते समय थोड़ा तेल बाहर छलक जाता था और बाँस चिकना हो गया। करते-करते बाँस इतना चिकना हो गया कि उसकी छाया बाँस पर से फिसलने लगा। थोड़ी दूर तक चढ़ने पर फिसल कर फिर नीचे गिर जाता था। लेकिन वह अपना प्रयास जारी रखा।

कितने ही बार क्यों न वो गिरा वह फिर से उठकर चढ़ने का प्रयास करता रहा। बस, उसके बाद वह छाया कभी और काम माँगने के लिए आया ही नहीं। चेले की छाया भी खुश कि उसे काम मिल गया और चेला भी खुश कि यह भयंकर बला टली।

कर्म-योग का अपने जीवन में यही स्थान है। कर्मयोग से अपने इस बदमाश मन को काबू में रखा जा सकता है। नहीं तो यह मन तो कभी तृप्त ही नहीं होता। हमेशा कुछ न कुछ कामना करते ही रहता है। ऊपर जो छाया की बात कही है, वह व्यक्ति के मन का ही प्रतीक है जिसे वह ध्यान की गहरी अवस्था में बाहर में प्रदर्शित करता है और वह इस मन का सामना नहीं कर पाता है। योग के अभ्यास से मन के उच्च स्तरों को जागृत किया जा सकता है। हाथी के समान बलशाली इस उच्चतम मन को सकारात्मक कार्यों में लगाना आवश्यक है, नहीं तो यह हाथी उलटकर हमें ही कुचलकर नष्ट कर सकता है। बोलते भी हैं न – खाली मन शैतान का घर होता है। यदि मन को सकारात्मक कार्यों में नहीं लगाया जाये, तो वह अनेक जटिल मानसिक समस्याओं को पैदा करेगा जिससे हमारा जीवन तबाह हो सकता है।

एक योग साधक के जीवन में कर्मयोग का यही स्थान है। वैसे देखा जाए तो चाहे हम योग का अभ्यास करें या न करें, हर एक व्यक्ति के जीवन में आने वाले हर कार्य का यही उद्‌देश्य है – मन को व्यस्त रखना। अपने घर-परिवार का काम हो, रोजी-रोटी कमाना हो, मौज-मस्ती हो या और कोई काम, सब का मूल उद्‌देश्य एक ही है। मन को व्यस्त रखना। और अगर मन को ऐसे व्यस्त नहीं रखेंगे तो वह उलटकर हमारे जीवन में अनगिनत परेशानियाँ खड़ी कर देगा।

जब कोई अपने मन को पूरी तरह से काबू कर लेता है, उसे स्थितप्रज्ञ की अवस्था प्राप्त होती है, तभी जाकर वह कुछ काम किये बिना रह सकता है। सोचो तो, अगर तुम्हें दिनभर कोई काम ही न हो, सालों तक, सदियों तक काम रहित रहोगे तो तुम्हारा क्या होगा? आज नहीं तो कल तुम पागलखाने में पहुँच जाओगे। मन अपने आपको व्यस्त रखने के लिए कुछ न कुछ काम खोजता रहता है और कुछ न मिले तो वह कल्पनाओं और कपोल कल्पित परिस्थितियों में रम जाता है, तरह तरह की कुंठाओं में फँस जाता है, अंदर ही अंदर घुटने लगता है, हमेशा सभी चीजों से असंतुष्ट रहने लगता है, घबड़ाने,

चिढ़ने, संशय करने और अपने आपको असुरक्षित महसूस करने लगता है। राग, द्वेष, काम, क्रोध इत्यादि में जकड़ जाता है और फिर वह तुम्हें कुरेदने लगता है। वही मन जिसने न्यूटन और आइन्स्टाइन जैसे प्रतिभाओं को पैदा किया, तुम्हारे कलेजे, किडनी, आँतें वगैरह को दीमक की तरह खाने लगता है और फिर दुनिया के बड़े से बड़े डॉक्टर भी इस दीमक को निकाल कर फेंक नहीं सकते।

नाम, रूप और आकार के इस सीमित दुनिया के अपने ही कायदे-कानून होते हैं। जिस दिन हम पैदा हुए, उसी क्षण से हम प्रकृति के नियमों के अधीन हो जाते हैं। कर्म और उसके परिणाम के इस मूलभूत सिद्धांत के अन्तर्गत सारी सृष्टि चलती है। जो भी तुम कर्म करोगे, उस हरेक कर्म का फल अवश्याम्भवी मिलेगा। बीज बोओगे तो पेड़ निकलेगा। उस पेड़ से फिर फल निकलेगा, फल में बीज रहता है और यह निन्यान्बे का चक्कर चलते ही रहता है। वास्तव में संसार के जीवन और मृत्यु भी इसी नियम के अन्तर्गत रहते हैं।

उपनिषदों में कहानी आती है कि पत्थरों में चेतना सोती है, औषधियों में करवट लेती है, प्राणियों में हिलने-डुलने लगती है और मनुष्य में विचार करने लगती है। इसीलिए यद्यपि यह नियम सारे सृष्टि में लागू है, फिर भी मनुष्यों में सर्वाधिक मात्रा में दिखाई देता है, क्योंकि मनुष्य तो चारों अवस्थाओं – सोना, जागना, क्रियाशील होना और सोचना – में रहता है। आधुनिक विज्ञान ने इसे अपनी परिभाषा में बतलाने का प्रयास किया है और योग में इसे कर्म के गहन सिद्धांतों से समझाया गया है।

जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म भी इसी कर्म के आधार पर तय होता है। संस्कृत के 'कृ' धातु से 'कर्म' शब्द बना है। इसका अर्थ कार्य 'करना' और उसके अन्तर्गत होनेवाले गति से निहित है। यह जान लेना आवश्यक है कि कर्म की परिभाषा केवल शारीरिक स्तर या दृष्यमान स्तर पर होने वाले गतिविधियों तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि मानसिक, भावनात्मक इत्यादि अन्य स्तरों पर उसके होनेवाले परिणामों को भी समाती है। वाणी, विचारों, भावनाओं, दैनंदिन सम्बन्धों और आसक्तियों के द्वारा भी कर्म बनते हैं। एक से दूसरे का जन्म होता है और इनके आपसी चक्रव्यूह से निकल पाना बिलकुल असम्भव सा लगता है। एक बार जो शरीर धारण कर लिया तो शारीरिक रूप से भले ही कोई कर्म नहीं हो रहा हो, केवल विचारों से भी कर्म बनते हैं और फिर

इनका फल भी निश्चित ही मिलता है। धीरे-धीरे इसी प्रकार पल दर पल कर्म का संचय होते जाता है। कर्म से फल बनता है और उस फल से फिर से नया कर्म का निर्माण होता है। और फिर कभी न कभी हमें इनके भार का अनुभव होने लगता है। बिना कर्म किये किसी को कोई फल मिलना असम्भव है। यह एक सनातन नियम है। एक बेवकूफ आदमी भले ही दुनिया के सभी किताबों का संग्रह कर लें फिर भी परिस्थिति ऐसी बनेगी कि वह उतने ही किताब पढ़ पायेगा जितने उसके भाग्य में लिखे होंगे। और यह भाग्य उसके अतीत के कर्मों पर निर्भर रहता है।

आज एकादशी के दिन हमने श्रीमद्भगवत गीता का पाठ किया है। इसके अठारहवें अध्याय में कर्म के पाँच आधार बतलायें हैं। इन पाँचों में से एक भी यदि न हो तो कर्म पैदा ही नहीं होता। पहला आधार है, कारण–जिसकी वजह से कर्म होगा। दूसरा है, कर्ता – जो कर्म करेगा। तीसरा है, स्थान – वह रंगमंच जहाँ पर कर्म की लीला खेली जाएगी। चौथा आधार है, चेष्टा – कर्म को करने के लिए जो प्रयत्न या पुरुषार्थ करना पड़ता है। पाँचवाँ और सबसे दुर्गम है, दैव – प्रारब्ध या अतीत की परछाई जो हमेशा तुम्हारे साथ रहती है। तुम्हारे याददाश्त में हो या न हो, लेकिन जो तुमने पहले किया था उसी की बदौलत आज तुम्हें फल मिल रहा है। और जो तुम आज करोगे उसी का फल तुम्हें कल मिलेगा। हाँ, जो गोली तुमने भूतकाल में दाग दी है उसे वापस तो नहीं किया जा सकता। जो कर्म तुमने किये हैं उनको तो भोगना ही पड़ेगा, उन्हें बदलना तो सम्भव नहीं है। परन्तु अपने भविष्य का निर्माण जरूर अपने ही हाथ में है, क्योंकि आज जो कर्म हम करने जा रहे हैं, वे ही हमारे भविष्य को तय करेगा। इसीलिए कर्म को करते समय यदि हम विवेक का इस्तेमाल करें, तो हम अपना भविष्य निश्चित ही सकारात्मक और उज्ज्वल बना सकते हैं।

सवाल उठता है कि कर्म करते समय विवेक का इस्तेमाल कैसे करें? योग का उद्देश्य, बल्कि मैं कहूँगी कि केवल योग ही नहीं, जीवन का भी यही उद्देश्य है, अविद्या से ज्ञान की तरफ बढ़ना। *तमसो मा ज्योर्तिगमय।* ज्ञान का क्या मतलब है? प्राय: लोकविचार है कि ज्ञान कोई बाहरी चीज है जिसे हम पाकर अपने में समानी पड़ती है। लेकिन वास्तव में ज्ञान का भण्डार तो हमारे भीतर में ही समाया है और हमें केवल उसके ऊपर ओढ़े आच्छादनों को हटाना भर है। अज्ञान से ज्ञान की तरफ बढ़ने का असली मतितार्थ यही

है–हमारे अन्दर में बसे उस ज्योति, उस प्रकाश पर ओढ़े अनेकानेक पर्दों को एक-एक करके हटाना और उस प्रकाश को पूरी तरह से उजागर करना। जब तक अविद्या या अज्ञान के इन पर्दों को दूर नहीं किया जाता, तब तक अपने अन्दर बसे ज्योति को हम नहीं देख सकते और न ही उस ज्ञान का अनुभव होता है। वास्तव में हम इस प्रकाश के अनुभव से बहुत ही दूर हैं, क्योंकि हमें यह भ्रम है कि ज्ञान किताबें को रट कर और दूसरों की कल्पनाओं और विचारों की नकल करने से ही प्राप्त होगा। अरे, ऐसे करने से तो हम ज्यादा से ज्यादा उस तोते की तरह बनेंगे जिसे 'राम' कहने के लिए सिखाया था। जिन्दगी भर तो राम-राम कहता रहा, लेकिन जब बिल्ली के रूप में मौत सामने आयी तो राम नहीं टाँय ही बोल दिया! वैसे ही असली ज्ञान बाहर से अपने ऊपर थोपने से नहीं आता, वह तो अपने अन्दर से प्रस्फुटित होता है।

और देखा जाए तो असली ज्ञान अपने अन्दर में छिपे आत्मा पर ओढ़े पर्दे को हटाकर ही मिलता है। जैसे मशहूर वैज्ञानिक न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का पता लगाया और उसे सारी दुनिया को प्रदान किया। इस सिद्धांत का पता लगाने में सेब की कहानी तो सब जानते ही हैं। सेब तो पेड़ से सदियों से गिरते आये हैं, वह कोई नयी घटना नहीं थी। अनेकों बार हम सब ने पेड़ पर से फल जमीन पर गिरते देखा है। परन्तु उसे देखकर किसी के अन्दर कोई भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। लेकिन फल गिरते देखकर इन महाशय के अन्दर कुछ चिनगारी जली और इस सिद्धांत का ज्ञान प्रज्वलित होकर सामने आया जिसने इस दुनिया को देखने का पूरा नज़रिया ही बदल डाला। कहने का तात्त्पर्य है कि गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का ज्ञान कहीं बाहर में – धरती की गहराई में या आसमान की ऊँचाई में छिपा नहीं बैठा था। वह तो उनके मन की गहराईयों से उभरकर बाहर आया। ज्ञान कहो, विद्या कहो या कोई और नाम दो, वह तो अन्दर में सुप्त रूप में ठीक उसी तरह से रहता है जिस तरह से काठ में अग्नि रहती है। उसे प्रकट करने के लिए दो लकड़ियों को घिसना पड़ता है। वैसे ही जीवन की यात्रा में संघर्ष करने पर अन्दर में सोया ज्ञान प्रकट होता है।

इस अनजान रास्ते पर चलते वक्त हमें ज्ञान प्राप्ति के लिये दो सबसे उत्तम मार्गदर्शक हैं– दु:ख और सुख। सुख-दु:ख के अनुभवों से हमें क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए का ज्ञान मिलता है। अपने जीवन में आये हर अनुभव से हमें कुछ न कुछ सीखने को मिलता है। किसी परिस्थिति में हम

खुशी से मदहोश हो जाते हैं, तो किसी कारण दु:ख से चूर-चूर हो जाते हैं। इन पर मनन करने से आगे आने वाले परिस्थितियों में कैसे रहना या क्या करना चाहिए, इसका रास्ता हमें पता लग सकता है।

तुम्हारे आन्तरिक ज्ञान की तलाश में दु:ख और सुख की भूमिका को सही ढंग से समझना पड़ेगा। नहीं तो उनके प्रति तुम्हारा रवैया गलत भी हो सकता है। जैसा कि हमने पहले भी कहा आज होने वाले दु:ख और सुख के अनुभवों का जड़ हमारे अतीत के संस्कार हैं। जो कर्म हम पहले कर चुके हैं उन्हीं का फल हमें सीख के रूप में सिखाने आता है। और हाँ, तुम जो अपने भीतर बसे ज्ञान का अनुभव नहीं कर सकते उसका कारण तुम्हारा मन या इन्द्रियाँ नहीं हैं। तुम्हारे अतीत के कर्म, संस्कार, वासनाएँ, आदतें, वृत्तियाँ और उन कर्मों से जन्म लिये इच्छा, अपेक्षा और उसके प्रति आसक्ति ही तुम्हें उस ज्ञान के अनुभव से वंचित रखती है। हर बार जब तुम ज्ञान की दिशा में बढ़ते हो तब कोई ताकत तुम्हें पीछे खींचती है। तुम्हारे हर विचार, आचार और व्यवहार के कारण बने कर्म और संस्कारों का 'गुरुत्वाकर्षण' ही तुम्हें वापस खींचता है और तुम्हारे प्रगति में एक अड़ंगा बनता है।

तो कर्म, उसके फल और उस फल से निकले एक और कर्म के इस कठिन 'चेन रिऑक्शन' से हम कैसे निकले? उसका रास्ता क्या है? क्योंकि शरीर धारण किया है तो कर्म तो होंगे ही। कर्म किया तो उसका फल की अपेक्षा भी होगी। उस फल के साथ-साथ एक और कर्म का निर्माण हो जाता है। यह तो पेड़ से निकला बीज और बीज से पेड़ वाली अखण्ड श्रृंखला ही होकर रह जाती है। तो इस चक्रव्यूह से कैसे निकले? नहीं तो आगे बढ़ने के बदले कर्म के जाल में फँस कर हमारी तो अधोगति ही हो जाएगी।

इस घनी अन्धेरी रात में आशा का किरण है। और उसका नाम है – कर्म योग। भगवत्गीता में योग की व्याख्या दी है – *योग: कर्म सुकौशलम्।* कार्य में निपुणता ही योग कहलाता है। मतलब कि जब भी तुम कोई भी कार्य निपुणता और उत्कृष्ट रूप से करते हो तब वह कर्म नहीं कर्म योग है। कैसे? क्योंकि कार्यकुशलता तभी सम्भव है जब तुम अपने आपको पूरी तरह उसी में झोंक देते हो। सम्पूर्ण एकाग्रता से जब कोई काम किया जाता है तब वह अनायास ही सर्वोत्तम ढंग से होता है। लेकिन ऐसे तो कभी-कबार ही हो पाता है, क्योंकि प्राय: हमारा मन विक्षिप्त ही रहता है। परिणामत: हमारे सभी कार्य

भी आधे-अधूरे ही रहते हैं। काम करते समय हमारा मन या तो उस कार्य के फल के बारे में सोचते रहता है या उसके इच्छित परिणाम पर या कहीं और ही रहता है। मतलब मन वर्तमान में एकाग्र रहने के बदले भविष्य में उड़ान भरते रहता है या अतीत में गोते खाते रहता है।

परिणामत: हमारे सभी कार्यों में त्रुटियाँ रहती हैं। अगर गौर करोगे तो जब भी तुम्हारे मन ने एकाग्र होकर कोई भी काम किया है, भले ही वह संगीत की रचना हो, काव्य रचना हो या चाहे वह खाना बनाना या बच्चों की देख-भाल करना हो, तब वह कार्य निपुणता और कुशलता से होता है।

अगर हम मान लेते हैं कि हम जो भी करते हैं वह केवल अपने मन को बहलाने के लिए करते हैं, उसे व्यस्त रखने के लिए करते हैं तो ऐसी स्थिति में हम क्या कर रहे हैं से ज्यादा जरूरी है हम जो भी कर रहे हैं वह कैसे कर रहे हैं। कर्म योग के बारे में समझने की सबसे पहली और अहम बात यही है। काम के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या है? दूसरी बात है कि कर्म के फल से मन को अलग रखना सीखना पड़ेगा। जो भी तुम करते हो उसका फल कैसे होगा यह तय करना तुम्हारे दायरे के बाहर है। अरे भाई, फल का त्याग नहीं करना है, काम किया है तो फल तो मिलना ही है, वह जाएगा कहाँ? उसका उपभोग तो तुम्हें ही करना है। फल तो तुम ही को मिलना है, चाहे वह फल इष्ट, अनिष्ट या मिला-जुला हो, उसे कोई तुमसे छीन नहीं सकता। जब फल तुम्हें ही मिलने वाला है तो उसके बारे में सोचकर अपने मन की एकाग्रता को काहे तोड़ना? क्योंकि फल पर नजर रखकर काम करने से तो काम में त्रुटियाँ ही त्रुटियाँ आती हैं।

जब कोई नृत्यांगना अपने दर्शकों के सामने अपना नृत्य पेश करती है तो बढ़िया नाँचने पर उसे दर्शकों की वाह-वाह तो मिलती ही है। पर यदि उसका मन वाह-वाह पर केन्द्रित हो जाए और नाँच भूल जाए तो? तब तो नाँच गड़बड़ा जाएगा और दर्शकों की वाह-वाह के बदले कुछ और ही मिलेगा। मन को नाँचने पर केन्द्रित है या वाह-वाह पर? सच पूछो तो रहस्य की बात बस यही है। एकाग्र मन से काम करो, फल की आशा पर नजर टिकाकर बिखरे हुए मन से नहीं। ऐसे खण्डित मन से कुछ होने का नहीं है।

पर ऐसे होता नहीं है। सारा लक्ष्य फल पर रहता है और काम तो बगल में ही रह जाता है। नौकरी करते हो तो तनख्वाह पर नजर है। मान लो, तुम्हें पता चले कि महीने के अन्त में तनख्वाह तो मिलने वाली नहीं है, तो दूसरे दिन से

ही काम पर जाना छोड़ दोगे। जीवन में जो भी हम करते हैं वह किसी न किसी अपेक्षा से ही करते हैं। पत्नि अपने पति से प्रेम करती हैं, क्योंकि वह उसके बदले में कुछ चाहती है; बेटा बाप से प्रेम करता है, क्योंकि उसकी नजर बाप की जायदाद पर है। उसे यदि पता चले कि बाप ने तो अपनी वसीयतनामे में बेटे के नाम एक नया पैसा तक नहीं लिखा है, तो उसी प्रेम को खूँखार गुस्से में बदलने में पलभर की देर भी नहीं लगती।

और यही तो आसक्ति की जड़ है। आसक्ति रहती है क्योंकि उस वस्तु या व्यक्ति से कुछ न कुछ अपेक्षा रहती है। उसी कारण दु:ख भी होता है और सुख भी मिलता है। इच्छित फल मिले तो खुशी होगी और अनिच्छित फल मिले तो दु:ख होता है। इन दोनों परिणामों के बीच जिन्दगी भर हम झूलते रहते हैं। जन्म जन्मांतरों तक यही सिलसिला चलते रहता है और आखिर इस चक्कर से हमारा मन थक कर जर्जर हो जाता है। कर्मयोग से जीवन को एक सकरात्मक और सृजनात्मक दिशा मिलती है। फिर जीवन तुम्हारे वश में होता है, तुम जीवन के नहीं।

जब तुम केवल काम के उद्देश्य से काम करते हो उसके फल से आसक्त होकर नहीं, तब तुम एक अनमोल मुक्ति का अनुभव करोगे। और उस आज़ादी में तुम आने वाले सुख और दु:ख दोनों से सीख सकोगे। जब तुम इस प्रकार से कर्म योग को पूरे मन और एकाग्र चित्त से करोगे तब तुमने अपने मन को सभी बाधाओं से अलग करने में यश पा लिया है। सामने आये काम पर मन को पूरी तरह से लगा दिया है, उसके अलावा मन कहीं भटकता नहीं है। यहाँ तक कि मन अपने आपको भी भूल जाता है। यही तो ध्यान की परिभाषा है।

महर्षि पतंजलि के राज योग सूत्रों में ध्यान की व्याख्या यही है – मन को विषयों से हटाकर किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करना और उसमें सम्पूर्ण रूप से समा जाना। दृष्टि, शब्द, रस, गन्ध और स्पर्श को लाँघकर मन को एक बिन्दु पर लगाने को ध्यान कहते हैं। मन एकाग्र हो गया है, तुम न तो भूत काल में, न भविष्य में, वर्तमान में और तुम्हारा मन सामने आये काम पर पूरी तरह से केन्द्रित है। जब कर्मयोग के द्वारा तुम इस अवस्था तक पहुँचोगे वह ध्यान की अवस्था है। फर्क बस इतना है कि तुम्हारी आँखें बन्द नहीं, खुली हैं। खुली आँखों से तुम ध्यान कर रहे हो, न कि आँखें बन्द करके एक

आसन में बैठकर। तुम भीड़-भड़ाके के बीच में हो और ध्यान भी कर रहे हो और उसका परिणाम सकारात्मक भी है। बिलकुल उसी तरह जैसे अर्जुन ने कुरुक्षेत्र की यद्धभूमि के बीच में लड़ते हुए किया था।

अब तुम लोगों को यह भी बतला दूँ कि इस अवस्था को पाना कोई आसान काम नहीं है। बहुत ही मुश्किल है इसे पाना। पग-पग पर वासना, काम, क्रोध, लोभ, इच्छाएँ सभी तुम्हें पीछे खींचने पर तुली रहती हैं। और मन पर इनका प्रभाव बहुत ही तगड़ा होता है। अब तक बतलाये कर्म योग को सिद्ध करने के लिए कठोर परिश्रम, नियमित अभ्यास और लगन की आवश्यकता होती है। और इसका अभ्यास करने का सही स्थान है आश्रम–जहाँ आप लोग अभी हैं। क्यों? क्योंकि आश्रम का वातावरण इन चीजों के बहुत ही अनुकूल होता है।

जिस आश्रम में कर्म योग नहीं हो, वहाँ लोगों को अपनी प्रगति के लिए एक बहुत ही रामबाण अस्त्र से वंचित रखा जा रहा है। आश्रम में निष्काम भावना से किये कर्म से ही कर्म क्षय होता है। जब तुम यहाँ कोई भी काम करते हो तो वह तुम अपने लिए नहीं करते। बहुत बार तो उस काम का फल किसे मिलेगा यह भी तुम नहीं जानते हो। तब तो किये काम से फल की अपेक्षा का सवाल ही नहीं उठता। जब तुम्हें बोला जाता है – आलू छीलना है, तो तुम बस आलू छील देते हो। यदि बोला जाए – जाओ, दवाखाने में जाकर मरीजों की देखभाल करो, तो वहाँ चले गये। हाँ, आश्रम में हो तो फल की अपेक्षा नहीं होने पर भी काम को सर्वोत्तम ढंग से करने का प्रयास रहता है। केवल *'योग: कर्म सुकौशलम्'* को अपने हर काम में निभाना है। मन में यही विचार रहता है। यही करते करते तो तुम निष्काम कर्म की कला सीख सकते हो।

आश्रम से लौटने पर अपने घर में भी फिर इसका अभ्यास करना चाहिए। जीवन में यही भाव रखने से तो सारा जीवन ही कर्म योग बन जाएगा। और जब इस भावना से कर्म योग में तुम सिद्ध हो जाओगे तभी कर्म और फल के अभेद्य चक्रव्यूह को तुम पार करने में सक्षम बनोगे। तब फिर तुम्हारे कर्म का दुष्परिणाम तुम पर न आकर उस दिव्य शक्ति में विलीन हो जाता है और तुम उससे मुक्त होते हो। शनै: शनै: कर्मों और संस्कारों का यह बोझ हल्का होने लगता है और एक दिन वह पूरी तरह से खत्म हो जाता है।

फिर जैसे ही ध्यान के लिए आँखें बन्द करते हो, तो मन झट से अन्दर की उड़ान लगाएगा। बिना किसी परिश्रम के ही वह आन्तरिक अनुभव तुम्हें मिलेगा। नहीं तो आँखें बन्द करने पर अनेकानेक प्रकार के भद्र-अभद्र विचार, दृश्य वगैरह सब दिखाई देंगे। कभी तुम दु:खी हो जाओगे, कभी रोना-धोना शुरू करोगे। मन में अनेक क्लेश पैदा हो जायेंगे और ध्यान टूट जाएगा। यह सब कर्मों की गति के कारण ही है। इसीलिए ध्यान के अभ्यास में यदि प्रगति करनी है, तो योग के हर साधक को कर्म योग को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लेना चाहिए। तभी जाकर ध्यान के अभ्यास में प्रगति कर पाओगे।

नमो नारायण

विज्ञानमय कोश का जागरण

कोशों का ज्ञान

विज्ञान का एक अभिन्न अंग होने के नाते निःसंदेह ही योग पर सम्पूर्ण मानव समाज का जन्मसिद्ध अधिकार है और इसी के चलते योग किसी एक समाज, जाति, गुट, धर्म या देश की अमानत नहीं है। इसके बावजूद यह कहना गलत नहीं होगा कि भारत योग की भूमि है, क्योंकि इसी देश ने योग-विद्या की विरासत को सम्भाल कर जीवित रखा है। इसी धरती में योग को सदियों तक पाला है, उसकी रक्षा की है और उसे जीवित ही नहीं, बल्कि उसका पुनरुत्थान भी किया है। इतिहास में सदियों तक होनेवाले अनेकों युद्ध, विध्वंस और विनाश से इसको बचाया है। और इसका पूरा श्रेय उन महान् ऋषि-मुनियों को जाता है जो एक रूप में इस धरती के प्रथम वैज्ञानिक थे।

जो व्यक्ति अपने मन को पूर्वानुमान, पक्षपात और समकालीन समाजिक विचारधाराओं से पूरी तरह से आज़ाद कर उसे इस विशाल अंतरिक्ष के रहस्यों की खोजबीन में लगाता है वही वैज्ञानिक कहलाता है। इस व्याख्या के अनुसार पूर्व कालीन ऋषि-मुनिगण तो वैज्ञानिक ही हुए, क्योंकि उन्होंने इस शरीर के अन्दर में होने वाले अंतरिक्ष और उसकी गहराईयों में जा-जाकर वहाँ छिपे रहस्यों को ढूँढने में ही अपना सारा जीवन न्योछावर कर दिया। असामन्य धैर्य, सच्चाई और लगन से वे मन और चेतना की सीढ़ियों को पार करते गए और उस अगम्य, अचिन्त्य, सर्वशक्तिशाली और सर्वव्यापक केन्द्र बिन्दु तक जा पहुँचें, उस स्रोत को पा लिया जो इस सारे जीव-जन्तुओं का उद्गम स्थान है। हाँ भई, मानना पड़ेगा कि आंतरिक दुनिया के इन अद्भुत खजानों के खोज का सारा श्रेय उन्हीं वैदिक काल के वैज्ञानिकों को ठीक वैसे ही जाता

है जैसे आज के वैज्ञानिक और तकनीकि युग में, बाहरी दुनिया में न भूतो न भविष्यति खोज हुए हैं जिनसे हमारा पूरा जीवन बदल गया है, और उसका सारा श्रेय आज के वैज्ञानिकों को ही जाता है।

यह अलग बात है कि उस जमाने में उन्हें वैज्ञानिक नहीं बोलकर, ऋषि-मुनि और संन्यासी के नाम से जाना जाता था। अगर देखा जाए तो ऋषि का मतलब होता है – द्रष्टा या देखनेवाला, मुनि का मतलब होता है – मनन करने वाला और संन्यासी का मतलब होता है – उस दिव्य ईश्वरी शक्ति को समर्पित होकर उसकी इच्छा के अनुसार चलनेवाला। प्राय: इन्हें धर्म के साथ जोड़ा गया है, लेकिन वे धार्मिक पण्डित नहीं हैं। हाँ, जैसे हम और आप किसी एक धर्म में जन्में हैं, चाहे हिन्दू हो, मुसलमान हो, इसाई हो या और कोई भी धर्म हो, वैसे ही उनका जन्म किसी एक धर्म में भले ही हुआ हो, लेकिन उससे उनकी ज्ञान की तृष्णा पर कोई भी असर नहीं रहा। और उस पुरातन वैदिक काल में धर्म का क्या स्वरूप रहा होगा, व्यक्ति और समाज पर उसका क्या असर रहा होगा, यह कहना बहुत ही मुश्किल है।

आज विज्ञान पर पदार्थ, उसके रहस्य और उसके अन्तिम स्वरूप पाने का फितुर सवार है, उसी पर पूरी तरह से आज सारे वैज्ञानिक तुले हैं। ठीक उसी तरह से उन दिनों के वैज्ञानिकों पर चेतना का धुन सवार था। पूरा का पूरा लक्ष्य इसी पर रहता था, इस नाशवान और क्षणभंगुर शरीर और दुनिया के परे एक अनन्त, अनादि, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान सत्य है, जिसे न मृत्यु मिटा सकता है, न अग्नि उसे भस्म कर सकता है, न पानी उसे डुबा कर खत्म कर सकता है और न ही अस्त्र-शस्त्र उसे काटकर नष्ट कर सकते हैं। किस प्रकार उस सत्य का अनुभव हमें मिले, यही उनके जीवन का ध्यास रहता था। सारी जिन्दगी बीत जाने पर पता चलता है कि जिन क्षणिक चीजों के पीछे हम पड़े थे उनका स्त्रोत तो कहीं और, उस अपरा, अदृष्य और अनन्त सत्य में है। तब क्या फायदा जब चिड़िया चुग गयी खेत? बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी इन दोनों जीवनशैलियों में बढ़िया समन्वय पाना ही कुशलता है।

इसी दैदिप्यमान लक्ष्य को पाने के लिए उन लोगों ने अगणित मुश्किलों और कठिनाइयों का समाना किया और उन्हें पार करते समय ही उस सूक्ष्मतम विज्ञानमय कोश की जानकारी उन्हें मिली। उन्हीं दिग्गजों के कठोर परिश्रम

और मेहनत की बदौलत ही हम लोग आज बैठकर इस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। नहीं तो हम लोगों को ख्याल भी नहीं रहता कि हमारे भीतर विज्ञानमय कोश नाम की कोई चीज छिपी भी है।

पंच कोश

योग शास्त्रों का कहना है कि हमारा शरीर पाँच कोशों से आच्छादित है, ठीक उसी तरह जैसे एक प्याज की चमड़ी के अनेक परत होते हैं जो उसके अन्दर के कोमल मध्य को ढँक देते हैं। हर एक कोश उसके पहले वाले से बढ़ती गिनती में सूक्ष्म बनते जाता है और हमारे इन स्थूल ज्ञानेन्द्रियों से हमें उसका पता नहीं चलता है। कह सकते हैं कि ध्यान की अवस्था में तीसरा नेत्र खुलने के बाद हम उन सूक्ष्म परतों को ग्रहण कर सकते हैं।

अन्नमय कोश

इन कोशों में सबसे प्रथम और सबसे स्थूल कोश है – अन्नमय कोश। यह स्थूल शरीर अन्न से बना है और उसे हम अपने इन्द्रियों से जान सकते हैं। बाकी कोश इसी के आधार से अपना आकार और स्वरूप धारण करते हैं।

प्राणमय कोश

अगला कोश प्राणमय कोश है, वह इस अन्नमय कोश से अधिक सूक्ष्म होता है और आँखों से दिखाई नहीं देता है। प्राणिक उर्जा से बना यह कोश हमारे स्थूल शरीर को घिरे रहता है और यद्यपि आप उसे देख नहीं पाते हैं, आप जहाँ भी जाते है वह आपके साथ जाता है।

यदि योगाभ्यास से आपकी चेतना प्रगट हुई हो, तो इस कोश को शरीर से लिपटे एक वलय के रूप में देख भी सकते हैं। ऐसे कई लोग हैं जिन्हें इस ऑरा को देखने की कला जन्म से ही प्राप्त होती है और वे लोगों के ऑरा को देखकर उनके भविष्य में होनेवाली घटनाओं को जान सकते हैं। आपकी मानसिक अवस्था और भावनाओं से यह प्राणिक शरीर प्रभावित होता है। गुस्से में लाल होना या ईर्ष्या में हरा पड़ना जैसे वाक्प्रचार इसी कोश में होने वाले बदलाव की ओर संकेत देते हैं।



मनोमय कोश

प्राणमय के परे इस शरीर को लिपटने वाला अगला वलय है मनोमय कोष, जो मानसिक ऊर्जा से बनता है और प्राणमय से ज्यादा सूक्ष्म होता है। अन्त:करण चतुष्ट्य – मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का उद्गम यहीं से है और उनका कार्यक्षेत्र भी इसी मनोमय कोश में है। देखना, समझना, सोचना, मनन करना, सत्-असत् का विवेक, स्वीकार करना या नहीं करना इत्यादि जैसे अनेकानेक कार्य जिन्हें हम अपने रोजमर्रा जीवन में हमेशा इस्तेमाल करते हैं इसी अन्त:करण के उपयोग का एक छोटा सा नमूना है। इस मनोमय कोश के बिना हम तो रसोई में पड़े सब्जी की तरह गोबर-गणेश ही बनकर रह जायेंगे!

यही कोश परा विद्या का स्थान भी है। बाहर की दुनिया को ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाता है और अन्दर की दुनिया को भी अनुभव किया जा सकता है। मन बहिर्मुखी बनकर देखता, सुनता, छुआता, सूँघता, स्वाद कराता है और बाहर की दुनिया की सारी जानकारी प्राप्त करता है। कभी काल बाहर की दुनिया से ऊबकर वह अन्तर्मुखी हो जाता है और आन्तरिक और आत्मिक अनुभवों को प्राप्त करता है। इन आत्मिक अनुभवों से वह तरोताजा हो जाता है। ध्यान की गहरी अवस्थाओं में ऐसे ही अनुभव होते हैं और इसीलिए ध्यान

करने से दिमाग तेज बनता है, मन प्रगल्भ होता है, अहंकार सकारात्मक बनता है और चित्त शुद्ध और निर्मल हो पाता है।

विज्ञानमय कोश

इन सब के परे विज्ञानमय कोश है, जो आत्मिक ज्ञान का भी स्थान है और निश्चय ही यह विगत सभी कोशों से अधिक सूक्ष्म है। तैत्तीरीय उपनिषद् में इसकी व्याख्या आती है – मन और शरीर से भिन्न एक और कोश शरीर को आच्छादित किये रहता है। यह आत्मिक ज्ञान का स्थान है। अन्य कोशों की भाँति इसका आकार भी स्थूल शरीर के समान ही रहता है। श्रद्धा इसका सिर है, शुभता और औचित्य उसका दाहिना पक्ष है, सत्यता उसका बायाँ पक्ष है, योग आत्मा है और महः इसकी पूँछ है।

कोश एवं लोक

गौर करने की बात है कि महः का उल्लेख इन कोशों और 7 लोकों के बीच के नाते को पहचानने की सुराग है। कहे गये सात लोक – भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् – चेतना के विकास के स्तर हैं। जैसे-जैसे चेतना अन्नमय, प्राणमय, मनोमय से गुजरकर विज्ञानमय में पहुँचती है, वैसे ही वह इन लोकों को भी पार करती है। भुः, भुवः, स्वः यह लोक स्थूल, मध्यम और दिव्य स्तर से तथा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय कोशों से नाता रखते हैं। महः–सिद्धों का लोक, जनः–ऋषि-मुनियों का लोक तथा तपः– मुक्त आत्माओं और तपस्वियों का लोक है। ये तीनों विज्ञानमय कोश के जगने, उसमें स्थिर होने और पूरे विकास से नाता रखते हैं।

सत्य लोक – उस अवर्णनीय आत्मिक आनन्द और आनन्दमय कोश से जुड़ा है जो निर्मल, शुद्ध और अखण्ड चेतना का ही दूसरा स्वरूप है। तैत्तिरीय उपनिषद् के अनुसार इसका आकार भी स्थूल शरीर के समान होता है। प्रिय उसका सिर है, मोद इसका दाहिना पक्ष है, प्रमोद उसका बायाँ पक्ष है, आनन्द उसकी आत्मा है तथा ब्रह्म उसकी पूँछ या आधारस्तम्भ है।

सिद्धों और सन्तों का लोक – महः लोक – विज्ञानमय कोश का आधारस्तम्भ है। इसी पर उच्च चेतना का महल खड़ा होता है। यदि यह पाया कच्चा रहे, यदि सिद्धियों को प्राप्त करना और उनका भोग करना ही लक्ष्य रहे

तब निश्चय ही उस साधक का पतन होगा और वह चेतना के निम्न स्तरों में गिरेगा। खासतौर से समाधि के अवस्था में इन सिद्धियों से विचलित होने की सम्भावना बहुत होती है। अगर उन सिद्धियों से विचलित होने से वह अपने आपको बचाने में यशस्वी होता है तब उसकी चेतना जन: लोक तथा तप: लोक के अगले उच्च स्तरों में बढ़ती है। जन: लोक को ऋषि-मुनियों का लोक और तप: लोक को जीवन मुक्त और विदेह मुक्त आत्माओं का लोक माना जाता है।

विज्ञानमय से आनन्दय की ओर

आध्यात्मिक जीवन में इस प्राप्ति को बहुत ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। इतना कि महर्षि पतंजलि ने अपने राज योग सूत्रों में इस पर एक पूरा अध्याय ही लिख दिया है। जब चेतना का विकास उस चोटी तक होता है कि व्यक्ति काल को पार कर जाता है। वह त्रिकालातीत हो जाता है, वह भूत, भविष्य और वर्तमान के परे जा सकता है। महर्षि पतंजलि ने इसे विभूति पाद का सम्बोधन दिया है। इस समय साधक का योग सिद्ध होता है और सिद्धियाँ प्रकट होती हैं। उन्होनें साधक को इन सिद्धियों की चमक में बह जाने से सचेत किया है। इस अवस्था को परोक्ष अनुभूति या वह अवस्था जहाँ चेतना एकाग्र हो चुकी है, लेकिन आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हुआ हो, भी माना गया है। इसके परे अपरोक्षानुभूति का अनुभव है जिसे आनन्दमय कोश का अनुभव भी माना गया है।

एक प्रकार से विज्ञानमय कोश आनन्दमय कोश का द्वार है। विज्ञानमय कोश में आनन्दमय कोश में होनेवाले अनुभवों की झाँकी मात्र मिलती है। वे अनुभव थोड़े काल के लिए आते हैं और फिर मन की चंचलता के कारण वे चले जाते हैं। सभी संत महात्माओं को इस स्थिति से गुजरना पड़ता है। भगवान बुद्ध और ईसा मसीह के जीवनी में भी ऐसी घटनाओं का उल्लेख मिलता है। भगवान बुद्ध को निर्वाण प्राप्ति के पहले घोर दैत्यों का और मनमोहक अप्सराओं का सामना करना पड़ा था। ईसा मसीह को भी भगवत् दर्शन के पूर्व चालीस दिन और रातों तक वासनाओं और कामनाओं का सामना करना पड़ा था। ये सब घटनाएँ विज्ञानमय कोश के जागृति कि ओर संकेत करती हैं।

जब विज्ञानमय कोश की जागृति होती है तब अनेक सिद्धियाँ प्रकट होने लगती हैं। ऐसे साधक को अतीन्द्रिय दृष्टि प्राप्त होती है, वह दूसरों का मन

जान सकता है, पूर्वाभास होने लगते हैं, अनेक स्थानों पर एक ही साथ प्रकट हो सकता है, असाध्य से असाध्य रोगों को स्पर्श मात्र से ही ठीक कर सकता है, कभी-कभी तो परकाया प्रवेश और पुनरुज्जीवन भी प्रदान कर सकता है। ऐसे अनेकानेक 'चमत्कार' कर सकता है जिसे सामान्य चेतना के व्यक्ति असम्भव ही मानते हैं। दिमाग को चकराने वाले इन अद्भुत सिद्धियों को देखकर ऐसे असामान्य व्यक्तियों को जनमानस में प्राय: भगवान, अवतार या चमत्कारी पुरुष का दर्जा मिल जाता है।

योग शास्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि तुम केवल वह नहीं हो जो तुम इन आँखों से देख सकते हो। तुम्हारा अस्तित्व हड्डी-माँस-मज्जा के इस पिंजड़े से कहीं ज्यादा है। वास्तव में यह प्रकट शरीर का अस्तित्व तो उस अदृश्य भाग पर आधीन है। यदि आँखों से ओझल वह तुम्हारा अस्तित्व हट जाए तो यह शरीर तो झड़ जाएगा और तुरन्त नष्ट हो जाएगा। अब तक जिन पाँच कोशों के बारे में हमने विस्तार से चर्चा की, वे ही तो हमारे अस्तित्व के अदृश्य प्रभाग हैं। योग के सभी अभ्यासों से एक-एक करके इन पाँच कोशों की जागृति होती है। अन्ततोगत्वा इन अभ्यासों से विज्ञानमय कोश की जागृति होती है और सच पूछो तो योग का एकमात्र लक्ष्य यही है।

कोश एवं शरीर

अब इन पाँच कोशों और हमारे तीन 'शरीरों' के आपसी सम्बन्ध के बारे में थोड़ी चर्चा करें। आप जानते ही होंगे कि हमारे तीन शरीर होते हैं – स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। पाँच कोशों के साथ साथ ये तीन शरीर हमारे हर विचार, भावना, व्यवहार, प्रतिक्रिया को बहुत ही गहरे स्तर पर प्रभावित करते हैं। अन्नमय कोश में होने वाले अनुभव स्थूल शरीर में दिखते हैं और प्राणमय और मनोमय कोश के अनुभव सूक्ष्म शरीर में दिखते हैं। कारण शरीर हमारे सारे कर्मों, संस्कारों, पिछले जन्मों के अनुभवों का भण्डार गृह है। जब हम इस सबसे उन्नत कारण शरीर की बात करते हैं, तब हम विज्ञानमय कोश की ही बात करते हैं।

जीवात्मा की यात्रा सबसे निम्न एक कोषीय अमीबा से शुरू होकर 84 लक्ष योनियों से गुजरती हई मनुष्य योनी के इस मुकाम पर पहुँची है। कीड़ा-मकोड़ा, मछली-कीट-पतंग, पक्षी-पंछी या अन्य पाशविक योनि

के अनुभव हमने अपने साथ इस विज्ञानमय कोश में जमा करके रखें हैं। आध्यात्मिक अनुभवों को प्राप्त करने के पहले हमें इन हर अनुभव का सामना करना पड़ता है। चाहे अच्छा हो या बुरा, लुभावना हो या डरावना, विज्ञानमय कोश में रखे इस भण्डार के हर एक अनुभव को झेलना पड़ता है– इसमें कोई शॉर्टकट नहीं होता। योग के जरिए हम इनका सामना नियमबद्ध, शिस्तित और जलद रूप में कर सकते हैं। विज्ञानमय कोश की पूरी जागृति होने पर ही हम आगे अपरोक्ष की अनुभूति कर सकते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान मे कारण शरीर के अनुभवों को सुषुप्ति या अचेतन के अनुभव माने जाते हैं। इसे सामूहिक अचेतन के अनुभव भी माने जाते हैं। दन्त कथाओं में कहे जादुई पिटारे की संकल्पना भी इसी का संकेत है। हमारे भूत-काल के गड़े मुर्दे भी इसी का एक रूप है। उस अचेतन मन में क्या रखा है यह जानने के लिए आपको इस विज्ञानमय कोश को ही पहले जगाना होगा। मनोमय कोश तक हम मन और बुद्धि के परिवेश में बँधे रहते हैं। सभी कुछ तर्क और विचार के सीमा में रहता है और इसीलिए हमारे थोड़ी बहुत वश में भी रहता है।

अन्तर्ज्ञान या प्रज्ञा

विज्ञानमय कोश में पदार्पण करते ही हम बुद्धि को लाँघ कर अन्तर्ज्ञान या प्रज्ञा के दायरे में प्रवेश करते हैं। वहाँ न मन काम करता है न बुद्धि न तर्क और न ही अनुमान, वहाँ केवल प्रज्ञा का बस चलता है। हर व्यक्ति इन स्तरों पर काम करता है – स्वाभाविक प्रवृत्ति (इन्स्टिक्ट), बुद्धि (इन्टलेक्ट) और प्रज्ञा (इन्ट्यूशन)। प्राय: इन में से हम मन और बुद्धि के स्तर पर काम करते हैं। मनोमय कोश तक ही हम सीमित रहते हैं। कभी-कभार हम इस मनोमय कोश को क्षणमात्र के लिए पार कर जाते हैं और उन क्षणों में हममें असामन्य प्रज्ञा का ज्ञान मिलता है। इसका अनुभव हम सबको अपने जीवन में कभी न कभी होता है। लेकिन ये अनुभव न ही हमारे बस में रहते हैं और न ही वे टिक पाते हैं। हम फिर से बुद्धि तर्क और प्रवृत्तियों के दायरे में लौट जाते हैं।

योग के द्वारा हम न केवल इन अद्भुत अवस्थाओं से परिचित होते हैं, बल्कि योग का उद्देश्य है कि हम इन पर प्रभुत्व पायें। बुद्धि हमारे लिए एक बहुमूल्य साधन है जिससे हम दुनिया में प्रगति कर सकते हैं, ठीक उसी प्रकार प्रज्ञा भी हमारे लिए एक और भी प्रभावशाली साधन बन सकता है और योग

के अभ्यासों से हमें बस यही चीज़ मिल सकती है। हाँ, हर व्यक्ति को अपने आपको देखकर, अपनी मानसिकता को जानकर, अपने कर्म-धर्म-मर्म को पहचानकर, अपना व्यक्तिगत रास्ता खोजना होता है।

यात्रा का आरम्भ

सर्वप्रथम हमें अपने आपको टटोलना होगा। हमारी नैया किस घाट में खड़ी है इसका पता लगाना होगा। देखना होगा कि हमारी मानसिकता क्या है? क्या हम तामसिक हैं, राजसिक हैं या सात्त्विक? माना कि हर व्यक्ति में तीनों का अस्तित्व रहता है, लेकिन इन तीनों में से कौन-सा गुण हममें प्रधान है? क्या हम विषादी, मूढ़, दीर्घ-सूत्री, आलसी और जिम्मेदारियों से सरकने वाले व्यक्ति हैं? तब फिर हम तामसिक स्वभाव के हैं। हर व्यक्ति को इनका अनुभव अपने जीवन में होता है, परन्तु तामसिक व्यक्ति इन स्वभावों से ऊपर नहीं उठ पाते हैं, उन्हीं में फँसे रहते हैं। राजसिक व्यक्ति हमेशा किसी न किसी कार्य को सम्पादन करने के पीछे लगे रहते हैं, कभी हार ही नहीं मानते। उनमें राग-द्वेष, कामनाएँ, इच्छाएँ बहुत रहती हैं। सात्त्विक व्यक्ति हमेशा ज्ञानी, प्रगल्भ, कर्तव्यदक्ष, आनन्द में रहते हैं। तो पहले इसका पता लगाना होगा कि विज्ञानमय कोश को जगाने की हमारी यात्रा कहाँ से शुरू हो रही है।

जागरण की तैयारी

अपनी मानसिकता को जानने के बाद फिर इस वाहन, इस रथ, इस शरीर को तैयार करना होगा। यात्रा तो शरीर से ही शुरू होती है, क्योंकि इस रथ में बैठकर ही तो तुम उस मुकाम तक पहुँचोगे न? तब फिर रथ को तैयार करना होगा। देखना होगा कि उसमें इंधन है भी या नहीं। जिस प्रकार मर्सेडिज बेंझ, बेन्टले या रॉल्स रॉईस चलानी हो, तो बहुत ही उच्च कोटि के तेल की जरूरत होती है। वैसे ही मन, बुद्धि और इन्द्रियों के जंजाल से छूटने के लिए इस शरीर को एकदम बढ़िया किस्म के इंधन की आवश्यकता होती है।

योग की परिभाषा में शरीर के इंधन को प्राण कहते हैं। प्राण का मतलब ऑक्सीजन नहीं होता। प्राण उस ऊर्जा का नाम हैं जो श्वास में बसती है। यही

जीवन की धारा है। इन्हीं प्राणों को हमें विशुद्ध करना है और साथ ही साथ उसकी मात्रा भी बढ़ानी है। प्राणों के अभाव में ध्यान लगना नामुमकिन है। मिनट-दो मिनट के लिए भले ही लग जाएँ पर विज्ञानमय कोश को जगाने के लिए उतना काफी नहीं है। उसके लिए तो बहुत लम्बे समय तक अखण्डित ध्यान लगना चाहिए।

हमारे दैनंदिन जीवन में प्राण का खर्चा बहुत ज्यादा होता है। मन के अनगिनत विचारों की दौड़ में, खाने-पीने में, हर एक क्रिया में प्राणों का व्यय होते रहता है। मन जब घबड़ाता है, उलझन में पड़ता है या चिंता इत्यादि में रहता है, तब तो प्राणों का बहुत-ही ज्यादा उपयोग हो जाता है। योग के अभ्यासों द्वारा प्राणों का फिजूल खर्च कम किया जा सकता है। तब फिर प्राणों को ध्यान के लिए बचा कर रखा जा सकता है। गाड़ी को ठीक कर लिए, इंधन भी जुटा लिए, अब ड्राईवर साहब को भी तो ठिकाने लगाना होगा। नहीं तो वे गाड़ी को कहीं और ही ले न जाएँ। तो मन को भी नियन्त्रित करना पड़ता है और केवल चेतन मन नहीं अवचेतन और अचेतन मन को भी ठीक रखना पड़ता है।

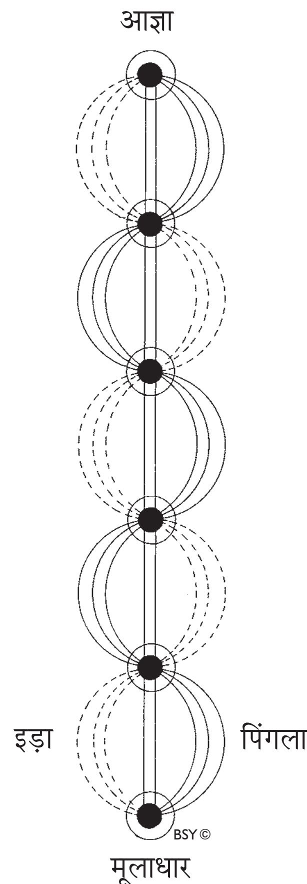
योग का मार्ग

योग का उद्देश्य शारीरिक आरोग्य, तन्दुरुस्ती, सुन्दरता या यौवन की प्राप्ति नहीं है। वे तो योग के 'साइड-इफेक्ट' हैं। जैसे आधुनिक दवाइयों के साइड-इफेक्ट होते हैं, ॲस्पिरिन खाने से पेप्टिक अल्सर हो सकता है तो किसी दवाई से अंधापन या चक्कर आना शुरू होता है, वैसे ही योग का भी साइड-इफेक्ट होता है। फर्क बस इतना है कि योग के साइड-इफेक्ट हानिकारक होने के बदले फायदा ही कराते हैं। उसका शरीर और मन दोनों पर सकारात्मक परिणाम होता है। शरीर आरोग्यवान् बनता है, मन एकाग्र हो पाता है। बुद्धि तीक्ष्ण होती है और विवेक पक्का होने से सही निर्णय लेने की क्षमता मिलती है। व्यक्तित्व शालीन और आकर्षक बनता है। आत्मविश्वास बढ़ता है और अनेक ऐसे फायदे हैं, परन्तु वे सब योग का लक्ष्य नहीं है, वे केवल योग का बाय-प्रॉडक्ट हैं।

योग का लक्ष्य बहुत ही सूक्ष्म और दूरगामी है। अपरोक्षानुभूति के उस अन्तिम और महाकठिन अवस्था या ध्यान लगाना यही योग का मूलभूत लक्ष्य

है। आसनों से शरीर की शुद्धि होती है। दिल, फेफड़े, कलेजा, गुर्दे, पाचन संस्था, खून और रक्ताभिसरण संस्था, दिमाग, अंत:स्रावी या एण्डोक्रायनल संस्था इत्यादि सभी अवयवों की शुद्धि होती है। प्राणायाम से शुद्ध रक्त सारे शरीर में पहुँचता है और दिमाग के बन्द तालें भी खुलते हैं जो ध्यान के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

जब सभी अवयव सौ फीसदी ठीक काम करने लगते हैं, सभी नाड़ियों से प्राणों का निर्विघ्न संचरण होने लगता है, तब अनायास ही हमारा मन शान्त हो जाता है। आगे आनेवाले ध्यान के अभ्यास के लिए यह शान्ति आवश्यक है। इसके सिवा ध्यान लगना असम्भव है। लोगों में भ्रम रहता है कि ध्यान लगने से मन शान्त होता है, परन्तु वास्तव में शान्त मन ध्यान की आवश्यकता है परिणाम नहीं। जब तक मन चंचल है, तब तक उस एकाग्र चित्त अवस्था तक हम पहुँच ही नहीं सकते, मन केवल इधर-उधर भागते रहेगा।



आसन और प्राणायाम के अभ्यास से शरीर और मन में संतुलन बना रहता है। इससे सभी शारीरिक और मानसिक क्रियायों में भी संतुलन बना रहता है। इनका परिणाम केवल शरीर से सीमित नहीं होता। व्यक्ति के भावनाओं पर भी उनका गहरा असर पड़ता है। इन भावनाओं से हमारे सोच-विचार, प्रतिक्रियाएँ, ग्रहणशीलता और जीवन में होने वाली घटनाओं के विश्लेषण पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आसन और प्राणायाम के अभ्यास से हमारे उच्छृंखल भावनाओं को काबू में लाना सम्भव है जिससे हमारे सारे व्यक्तित्व पर सकारात्मक असर होता है। हमारे शरीर में 72,000 नाड़ियाँ हैं, जिनसे प्राणों का संचार होता है। प्राणायाम के अभ्यास से इनकी शुद्धि होती है जिससे इनमें होने वाले प्रवाह में कोई

बाधा या विघ्न दूर हो जाता है और शरीर में प्राणों की मात्रा बढ़ जाती है। सभी नाड़ियों में प्रमुख नाड़ियाँ तीन हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना।

इड़ा नाड़ी शरीर में स्थित सिम्पथेटिक सिस्टम से हमारे मानसिक गतिविधियों से सम्बन्ध रखती है और पिंगला नाड़ी शारीरिक गतिविधियों से। रीढ़ की हड्डी के निम्न भाग से निकल कर ये दोनों आपस में मिलती हुई सिर से लेकर पैरों तक सारे शरीर में प्राणों का संचार कराती हैं। इन दोनों के ताल मेल में गड़बड़ी हो जाने से शारीरिक या मानसिक बीमारियाँ तो हो ही जाती हैं, लेकिन साथ में सुषुम्ना नाड़ी के जागने में भी बाधा पहुँचती है।

योग के अलग अलग अभ्यास इन दोनों नाड़ियों में आपसी तालमेल बनाकर रखता है। इन दोनों का सही तालमेल होने से सुषुम्ना जागती है और सुषुम्ना जागने के बाद ही विज्ञानमय कोश के अनुभव प्राप्त होने लगते हैं। विज्ञानमय कोश को जगाने का यही रहस्य है। जब तक इड़ा और पिंगला में समन्वय नहीं हो जाता है तब तक सुषुम्ना की जागृति नहीं हो सकती और उसके सिवा विज्ञानमय कोश के अनुभव नामुमकिन हैं।

जागृति के स्तर

यह जागृति तीन स्तरों में होती हैं – प्रत्याहार, धारणा और ध्यान। आसन, प्राणायाम के अभ्यासों में पारंगत होकर इड़ा और पिंगला में समन्वय मिलाने के बाद देखा जाता है कि मन आसानी से अन्तर्मुखी बन सकता है। बाहर की दुनिया से अन्दर की दुनिया मे जाना आसान बन जाता है। प्राय: चेतना बहिर्मुखी रहती है और शब्द, स्वाद, दृष्टि, स्पर्श और गन्ध, इन ज्ञानेन्द्रियों से मिलने वाले संदेशों कि ओर स्वभावरूप से आकर्षित होती है। वही चेतना अब इन संदेशों को पार कर अन्तर्मुखी बनती है। इसका मतलब है कि तुम इन क्रियाओं द्वारा बाह्य जगत् के संदेशों को स्वेच्छा से बन्द कर के अन्दर की दुनिया में प्रवेश कर सकते हो। इन्द्रियों को इस प्रकार अन्तर्मुखी करना प्रत्याहार कहलाता है। इसमें पारंगत हो जाने के बाद ही आगे का रास्ता खुलता है। प्रत्याहार करने के अनेक उपाय हैं पर प्राणायाम सबसे उत्तम माना गया है। मन की प्राथमिक स्थिति तामसिक हो, राजसिक हो या सात्त्विक, इस मार्ग से प्रत्याहार करना सबसे उपयुक्त है।

महत् प्रयासों के बाद कभी-कभी कुछ ही क्षणों के लिए भी यदि यह असामान्य पुरुषार्थ यदि आप कर पाते हैं तो अन्तर्मुखी बने चेतना को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करना पड़ता है और उसी को धारणा कहते हैं। नियमित अभ्यास से इन दो अंतरंग अभ्यासों मे कुशलता मिलती है और धीरे-धीरे ध्यान अपने आप लगना शुरू होता है। इन तीनों अभ्यासों में कोई निश्चित सीमाएँ नहीं हैं। एक में कुशलता मिलने पर अनायास ही अगले वाले में प्रवेश हो जाता है।

बहिरंग अभ्यासों को करते समय, खासतौर से प्राणायाम का अभ्यास करते समय अपने आप प्रत्याहार का अनुभव प्राप्त हो सकता है। प्रत्याहार की यह अवस्था बनी रहे तो अनायास वह धारणा में बदलती है और फिर आगे ध्यान लगता है। ध्यान लगना ही विज्ञानमय कोश के अनुभवों को प्राप्त करना है। और जब विज्ञानमय कोश के अनुभव आते हैं, तो आहिस्ता आहिस्ता आनन्दमय कोश के अपने आनन्द-स्वरूप का दर्शन भी होने लगता है।

विज्ञानमय कोश का अनुभव

विज्ञानमय कोश हमारे अचेतन मन के गहरे स्तरों की छवी है। वह रंग, प्रकाश, प्रतीक और चिह्नों की दुनिया है। व्यक्तिगत अचेतन मन (इंडिविजुअल अनकाँशियस) सामूहित अचेतन मन (कलेक्टिव अनकाँशियस), जिसे हिरण्यगर्भ के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है, उससे जुड़ा है। यहाँ पर सभी चीजों का ज्ञान विद्यमान रहता है। इस हिरण्यगर्भ में हर वस्तु या घटना जो भूत काल में हो चुकी है या भविष्य में होने वाली है, समायी रहती है। यह तो सारे विश्व का भण्डारगृह है जिससे हर व्यक्ति का अचेतन मन जुड़ा रहता है। इसीलिए विज्ञानमय कोश का अनुभव हो जाने के बाद हममें प्रज्ञा का उदय होता है, जिससे काल के चतुर्थ परिमाण में हम पहुँचते हैं और भूत-भविष्य-वर्तमान के परे जाना सम्भव हो पाता है।

जब मन देश, काल और पदार्थ के परे जाता है, तब एक उच्च ज्ञान का उदय होता है। अचेतन मन की जादुई दुनिया कल्पना से यथार्थ में बदलती है। यह तो समस्त चीजों और ज्ञान का अनन्त भण्डार है। रोजमर्रा के जीवन में होनेवाली सीमाएँ यहाँ पर नहीं होतीं। जैसे यहाँ कोई हिन्दुस्तानी ज्ञान या अमरीकी ज्ञान नहीं होता। न ही धर्म की परिसीमाएँ रहती हैं। धर्म तो आदमी

ने अपने सुविधा के लिए बनाया है। उसका इस अनन्त ज्ञान में कोई स्थान नहीं है। यह ज्ञान सार्वभौम है–देश, काल और पदार्थ की सीमाओं के परे है।

इस ज्ञान को अगर अपने पूरे स्वरूप में जानना हो तो तुम्हे अपने स्वयं का परिचय जानना होगा। परिचय माने तुम्हारा अतीत का ज्ञान, पुरखों का ज्ञान, विरासत का ज्ञान। हर व्यक्ति की वंश परम्परा होती है। मैं भारतीय नागरिक हूँ, लेकिन जरूरी नहीं की यही मेरा वंश है। धर्म, जाति, राज्य वगैरह जैसे ठप्पे हमने अपने आप पर इतने आरोपित किये हैं कि हम उनमें बन्ध गये हैं, उसके आगे हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं रहा।

सामाजिक परिस्थितियों के सामने झुककर हम उस साँचे में ढल जरूर जाते हैं, परन्तु हमारा अस्तित्व उससे कहीं ज्यादा है। स्वयं के इस खोज में हमें जाति, देश, धर्म के सीमाओं को पार करके हमारे मूल परिचय तक पहुँचना होगा। हमारी वंश परम्परा क्या है? हमारे उन पूर्वजों के मत क्या थे? वे किन मंत्रों, कर्म-काण्ड का उपयोग करते थे? अपनी चेतना के स्तर को बदलने के लिए वे क्या किया करते थे?

भले ही आज तुम अमरीकी नागरिक हो, लेकिन हो सकता है कि तुम्हारे मूल भारत के हैं। उत्तर ध्रुव से दक्षिण ध्रुव तक, पेरू से अलास्का तक असंख्य जातियाँ रही हैं, जो समय और परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग गुट, मत, जाति, देश इत्यादि में एकत्रित हुए। धीरे-धीरे उनकी यह मूल पहचान लुप्त सी हो गयी, लेकिन यह सब अचेतन मन में बसा रहा और इसका अचेतन मन पर असर भी पड़ता रहा।

उदाहरण के लिए भारत की एक जनजाति है संथाली, जो झारखण्ड में मिलती है। इनकी मानसिकता और इसी देश की दूसरी जाति निल्गिरी प्रान्त की टोडा जनजाति से बिल्कुल भिन्न है। यदि तुम्हें मन के गहरे स्तरों तक पहुँचना हो, तो अपने इस परिचय को जानना आवश्यक है। इससे पता लगेगा कि किन अभ्यासों से तुम्हें तुरन्त परिणाम मिलेंगे। हर जाति के अपने विशिष्ट मंत्र, औषधियाँ इत्यादि कर्मकाण्ड रहे हैं। जब तक वह जाति अपना अस्तित्व कायम रख सकी, तब तक उसके यह कर्मकाण्ड बरकरार रहे। उसका अस्तित्व मिट जाने के बाद, धीरे-धीरे उनके अभ्यास भी मिट गये। हमारे अचेतन मन की गहराईयों में वह बस एक यादगार बनकर रह गये। इन्हीं यादगारों को

उजागर करने के लिए प्रतीक, मंत्र, रंग, वगैरह का उपयोग किया जाता है और इसी से चेतना के स्तरों को भी बदला जा सकता है।

मन, बुद्धि, तर्क-वितर्क के विकास के लिए हमें समाज में सिखाये जाने वाली विद्याएँ और कलाएँ काफी है। जब तुम्हें उनके परे विज्ञानमय कोश के गूढ़ और अप्रकट दुनिया में जाने की इच्छा होगी तब तुम्हें अपनी प्रज्ञा को जगाना पड़ेगा और अपने मूल प्रकृति को पहचानना होगा।

मूल स्वभाव और प्रज्ञा

यद्यपि अपने मूल स्वाभाव और प्रज्ञा में अनेक समानताएँ हैं, वे दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। वास्तव में वे एक ही वस्तु के दो अलग पहलू हैं। जो चेतना के पाशविक स्तरों में मूल स्वभाव है वही चीज चेतना के उच्च स्तरों में प्रज्ञा के रूप में प्रकट होती है। पशु-पक्षियों पर गौर करने पर देखते हैं कि उन्हें आने वाले विपत्तियों का स्पष्ट पूर्वाभास होता है। अब इसे मूल पाशविक स्वभाव कहोगे या प्रज्ञा? जीव अपने आपको बचाने के लिए रास्ता निकाल लेता है जिसे मनोविज्ञान में सर्वायवल इंस्टिंक्ट भी कहते हैं। इसी को जब हम विकसित करते हैं तो प्रज्ञा का उदय होता है।

आज हमारे सामने सबसे बड़ी दिक्कत है कि हमारा यह मूल स्वभाव कमजोर पड़ गया है। आज की दुनिया में हम खोपड़ी का इतना ज्यादा उपयोग करते हैं कि उन स्वभावों को हमने नजरअंदाज ही कर दिया है। उनसे हमें अपना नाता फिर से जोड़ना होगा। आज विचार-तर्क-बुद्धि के कटघरे में इस मूल स्वभाव का बलि चढ़ चुका है और इसी के चलते हमारे मूल प्रकृति में दोष आ गये हैं।

विज्ञानमय कोश में जो चेतना प्रकट होती है वह मन के परे है। मन के द्वारा उसे पाया नहीं जा सकता। मन और बुद्धि से तुम बाहर की दुनिया में होने वाले घटनाओं का सामना कर सकते हो, लेकिन विज्ञानमय कोश तक पहुँचने के लिए इस मन को उखाड़कर फेंकना पड़ता है। मन और बद्धि तुम्हें मनोमय कोश तक साथ देते हैं, उसके बाद वे तुम्हारे रास्ते का रोड़ा बन जाते हैं।

मन को लाँघने पर ही दिव्य प्रज्ञा का विस्तार होता है। जब तक तुम तर्क की दुनिया में हो, तब तक प्रज्ञा प्रकट नहीं होगी। और प्रज्ञा का कोई तर्क-

कायदा कानून नहीं होता, वह तो केवल गहरी भावना के रूप में प्रकट होती है। वह बहुत ही स्पष्ट दृष्टांत में प्रकट होती है मानो सचमुच वह घटना घट रही हो। एक बार हमारे गुरुजी को मिलने एक महिला आयी। जैसे वह कमरे में अन्दर आयी, मुझे वह सफेद रंग की साड़ी पहने नजर आयी यद्यपि उसने लाल रंग की साड़ी पहन रखी थी। एक क्षण मात्र के लिए वह दृश्य रहा। मैंने भी उसे खास महत्त्व नहीं दिया। कुछ दिनों बाद पता चला कि उसके पति का दर्दनाक अपघात हुआ और वह विधवा हो गयी। मेरे आश्चर्य का अनुमान आप लगा सकेंगे, जब दो या तीन हफ्ते बाद वही महिला गुरुजी के दर्शन के लिए सफेद साड़ी पहन कर आयी। इसी को प्रज्ञा कहते हैं।

मजे की बात है कि पहले तो प्रज्ञा केवल नकारात्मक घटनाओं को दर्शाती है। बीमारी, मृत्यु, विनाश, विपदा जैसी चीजों का ही पता लगता है। राज योग सूत्रों के विभूति पाद में महर्षि पतंजलि ने इसपर स्पष्ट टिप्पणी की है। सिद्धियों के उपयोग या यूँ कहिए उनके दुरुपयोग से बचने के लिए कहा गया है। उन्होंने तो सिद्धियों को योग मार्ग में बाधा माना है।

ते समाधवुपसर्गव्यूत्थाने सिद्धय: ...3:38

सामान्य लोगों को तो सिद्धियों की प्राप्ति एक बड़ी उपलब्धि है जिसका डंका वे दुनिया में पैसा और शोहरत कमाने के लिये बजाना चाहेंगे। मगर आध्यात्मिक पथ पर वे घोर बाधायें प्रस्तुत करती हैं। यदि इनका उपयोग किया जाए, तो समय में वे लुप्त हो जाती हैं और साधक को कंगाल छोड़ देती हैं। विज्ञानमय कोश को जगाते वक्त नहीं चाहने पर भी साधक को विभूतियाँ प्रदान होती हैं, क्योंकि उस समय साधक के अन्दर की प्रतिभा प्रकट होती है।

मन और बुद्धि के परे

विज्ञानमय कोश को जगाने के लिए मन और बद्धि को लाँघना पड़ता है। इसके लिए सबसे आसान तरीका है कि सभी तर्क को चुनौती देने वाले अभ्यासों को अपनाओ। योग और तन्त्र के अनुसार यह तरीका काम भी करता है। इसीलिए सभी गूढ़ तन्त्रों में मंत्र, गायन, नृत्य इत्यादि का समावेश होता है। सूफी मतों में तो गोल-गोल घूमने वाले दरवेश और फकीरों का प्रादुर्भाव इसी कारण

से है। दुनिया के हर मत, हर जाति ने इस विद्या का उपयोग अनादि काल से किया है। इन चीजों पर अब गौर करना जरूरी हो गया है।

हाँ, यदि तुम्हे अपने अतीत का ज्ञान नहीं भी, तब भी योग के इन अभ्यासों के उपयोग से फायदा तो अवश्य ही होगा। जैसे कि मैंने शुरू में ही कहा था योग एक सार्वभौम विद्या है, सारी मानव जाति की विरासत है। और दुनिया में जितने भी गूढ़ कलाएँ और तन्त्र हैं, वे कहीं न कहीं योग से सम्बन्ध रखते हैं। इसलिए माना गया है कि आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के नियमित अभ्यास से निश्चित ही विज्ञानमय कोश को जगाया जा सकता है।

नमो नारायण



नोट

नोट



स्वामी सत्यसंगानन्द (सत्संगी) का जन्म चन्द्रनगर, पश्चिम बंगाल में सन् 1953 में हुआ। 22 वर्ष की अवस्था से ही उन्हें आन्तरिक जागरण की अनेक अनुभूतियाँ होने लगीं और वे अपने गुरु स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शरण में आयीं। सन् 1981 से अपने गुरु के साथ निरंतर देश-विदेश में यात्राएँ कर उन्होंने योग एवं तन्त्र परम्परा में एवं आधुनिक विज्ञान एवं दर्शनों में गहरी पैठ जमायी और अनेक ग्रन्थों पर प्रमाणिक टीकाएँ लिखीं।

वे अपने गुरु की शिक्षाओं की अत्यन्त प्रभावशाली प्रचारक हैं। रिखिया में शिवानन्द मठ की स्थापना उनके अथक प्रयासों का ही परिणाम है। वे इसकी गतिविधियों का प्रभावी मार्गदर्शन करते हुए रिखिया पंचायत के कमजोर, सुविधाहीन एवं उपेक्षित वर्गों के सामाजिक एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए निरन्तर कार्यरत हैं। उन्होंने सन् 2004 में शिवानन्द आश्रम एवं सन् 2006 में रिखियापीठ की स्थापना की, जहाँ वे प्रथम पीठाधीश्वरी के रूप में परम गुरु स्वामी शिवानन्द सरस्वती की मूलभूत शिक्षा – सेवा, प्रेम और दान – को मूर्तरूप प्रदान कर रही हैं।

सन् 2007 में उन्हें परमहंस परम्परा में दीक्षित किया गया। वर्तमान में देश-विदेश में योग एवं सेवा का संदेश पहुँचाने के लिए बृहद् रूप से यात्राएँ कर रही हैं। करुणा, कर्मठता एवं प्रेरणा की प्रतिमूर्ति स्वामी सत्संगी अपने गुरु के मिशन की आधारशिला हैं।



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

यह पुस्तिका स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती द्वारा रिखियापीठ में जनवरी, 2007 में ईरान से आये साधकों को दिये गये सत्संगों का संकलन है।

'ज्ञान योग' आत्म-तत्त्व को जानने की व्यावहारिक विधियों की जानकारी देता है। 'कर्म योग' आध्यात्मिक उन्नति के लिए दैनिक क्रियाकलापों में तन्मयता के साथ संलग्न होने का मार्ग बतलाता है। 'विज्ञानमय कोश का जागरण' चेतना के क्रमशः सूक्ष्म स्तरों पर साधक के क्रमबद्ध आरोहण पर प्रकाश डालता है।

